अपहरण, किसी का सर्वस्व छीन लेना, कुमारी कन्या का अपहरण तथा किसी ग्राम पर आक्रमण करके उसका स्वामी बन बैठना, ये सब बातें डाकू भी निंदित मानते हैं। चोर-डाकू को परस्त्री-स्पर्श और ऊपर के सभी पाप त्याग देना चाहिए। जिनका सर्वस्व लूट लिया जाता है, वे लूटने वाले को भी कभी लूट लेते हैं। अतएव चोर-डाकू भी किसी का सर्वस्व न लूट ले, अपितु उसके निर्वाह के लिए छोड़ दे। (अध्याय)

. बल का महत्त्व और डाकुओं में भी नीति-नियम

भीष्म ने बल की महत्ता बतायी और अपने बुरे कर्मों पर प्रायश्चित करने की सूझ दी, जैसे–सत्शास्त्रों का स्वाध्याय करे, पवित्रात्माओं की सेवा करे, मधुर वाणी बोले, अपने मन को उदार बनावे, उच्च कुल में विवाह करे, दूसरे के गुणों को आदर दे, प्रतिदिन स्नान के बाद इष्ट का नाम जपे, अच्छे स्वभाव का बने, अधिक न बोले, अपनी निंदा से क्षुब्ध न हो, अनेक परोपकार में मन लगावे इत्यादि।

कायव्य नाम का एक डाकू था जो अपने काम में मर्यादा रखता था और निपुण था। वह माता-पिता की सेवा करता था और वन में रहने वाले तपस्वियों, संन्यासियों, ब्राह्मणों के घर में अन्न आदि पहुंचा देता था। जो लोग लुटेरे का अन्न दूषित समझते थे, उनके घर में सबेरे ही अन्न-फल आदि रख जाता था। एक दिन अन्य डाकुओं ने उससे अपना सरदार बनने का प्रस्ताव रखा जो, स्वयं मर्यादाहीन तथा क्रूर थे।

कायव्य ने उनसे कहा–प्रिय बंधुओ! तुम स्त्री, कायर, बालक तथा तपस्वी की हत्या न करना। जो तुमसे युद्ध न करता हो, उसे न छेड़ना। स्त्रियों का अपहरण न करना। ब्राह्मण को न सताना। खेत की फसल नष्ट न करना। किसी के विवाह आदि उत्सवों में विघ्न न डालना। देव, पितर, अतिथि आदि के पूजा-सत्कार की जगह में विघ्न न करना। जो व्यापारी स्वेच्छा से तुम्हें धन न दें, उन्हीं को लूटना। जो चोर-डाकू होकर भी धर्मशास्त्रों के अनुसार चलने लगता है, उसका सुधार होता जाता है। इस प्रकार कायव्य डाकू ने अपने उपदेश से अन्य डाकुओं को पाप से बचाने का रास्ता निकाला (अध्याय -)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है–''इस कायव्यचरित के द्वारा किसी भागवत ने यह कल्पना की है कि दस्युओं में भी भागवतों जैसा नीतिशास्त्र संभव

है। अनुमान होता है कि गुप्तयुग के किसी आटविक राजा के जीवन का वर्णन यहां किया गया है।"

. राजा का धन–संचय और देश–काल के संबंध में तीन मत्स्यों की कथा

भीष्म ने कहा–राजा अपना खजाना जिस उपाय से भरे, उसके लिए ब्रह्मा जी की प्राचीन गाथा है। उन्होंने कहा है–राजा को चाहिए कि यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों का धन न ले। देव–संपत्ति के धन को न ले। उसे लुटेरों तथा कंजूसों का धन लेना चाहिए। जो धनी अपना धन परोपकार में नहीं लगाता है, उसका धन राजा छीनकर प्रजा की सेवा में लगावे। जैसे पृथ्वी की धूल पीसी जाय तो वह और सूक्ष्म हो जाती है, वैसे विचार करने से धर्म का स्वरूप सूक्ष्म होता जाता है (अध्याय)।

जो मनुष्य संकट आने के पहले अपना उससे बचाव कर लेता है वह 'अनागतविधाता' कहलाता है, जिसे ठीक समय पर बचाव का उपाय सूझता है, वह 'प्रत्युत्पन्नमति' कहलाता है और जो व्यर्थ विलंब करने वाला होता है वह 'दीर्घसूत्री' कहलाता है और वह नष्ट हो जाता है।

कम जल वाला एक तालाब था। उसमें बहुत मछलियां थीं और उसी में तीन कार्यकुशल मत्स्य रहते थे जो परस्पर मित्र थे। उसमें एक अनागतविधाता, दूसरा प्रत्युत्पन्नमति तथा तीसरा दीर्घसूत्री था। एक दिन कुछ मछलीमारों ने मछलियों को मारने के लिए उस जलाशय से पानी बाहर निकालने के लिए कई नालियां बनायीं। अनागतविधाता मत्स्य ने कहा–बंधुओ! इस जलाशय की मछलियों पर अब संकट आने वाला है, अतः अब हम पहले ही दूसरे गहरे जलाशय में चले चलें। जो आने वाले संकट से पहले सावधान हो जाता है, उसका प्राण संकट में नहीं पड़ता। दीर्घसूत्री ने कहा–अभी क्या हड़बड़ी है? समय आने पर निकल चलेंगे। प्रत्युत्पन्नमति ने कहा–समय आने पर मैं सम्हल जाऊंगा। इन दोनों की बात सुनकर अनागतविधाता मत्स्य एक नाली के सहारे बड़े जलाशय में जा पहुंचा। जब मछुआरे मछली मारने लगे तब प्रत्युत्पन्नमति मत्स्य भी भाग निकला और बड़े जलाशय में चला गया; किंतु दीर्घसूत्री मत्स्य मछुआरों के जाल में फंसकर मारा गया।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

इस प्रकार अनागतविधाता तथा प्रत्युत्पन्नमति व्यक्ति संकट से बचते हैं; परंतु व्यर्थ विलंब करने वाला आलसी, दीर्घसूत्री संकट में फंसता है। काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात, लव, मास, पक्ष, छह ऋतु, संवत्सर और कल्प 'काल' कहलाते हैं और पृथ्वी को देश कहा जाता है। देश तो दिखता है, किंतु काल नहीं दिखता। मनुष्य अपनी कार्यसिद्धि के लिए देश और काल का सही उपयोग करे, यही उसकी बुद्धिमानी होगी। ऋषियों ने अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र में देश और काल को ही कार्य-सिद्धि का उपाय माना है। मनुष्य के कार्य देश तथा काल में ही सफल होते हैं। विवेकवान मनुष्य देश और काल का सही उपयोग करके अपना कार्य बना लेता है (अध्याय -)।

. शत्रुओं से घिरे हुए राजा के बोध के लिए चूहे-बिलाव का आख्यान

युधिष्ठिर ने कहा–पितामह! शत्रुओं से घिर जाने पर राजा अपना बचाव कैसे करे? भीष्म ने कहा–राजन! विभिन्न कार्यों के प्रभाव से शत्रु मित्र बन जाते हैं और मित्र शत्रु बन जाते हैं। वस्तुतः शत्रु-मित्र की परिस्थिति सदा एक समान नहीं रहती। अतएव देश-काल की स्थिति देखकर किसी पर विश्वास तथा किसी से युद्ध करना चाहिए। समझदार मित्रों से संधि करना ही चाहिए, आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओं से भी संधि कर लेना चाहिए। मूर्ख मनुष्य शत्रुओं से कभी संधि नहीं करता, अतएव वह असफल होता है। जो देश और काल की परख रखकर संधि-विग्रह करता है वह सफल होता है।

एक पुरानी कहानी है। एक बरगद के पेड़ के आश्रय में रहने वाले एक बिलाव तथा एक चूहा का प्रसंग है। चूहा बुद्धिमान था। वह बरगद की जड़ के पास सौ दरवाजे का एक बिल बनाकर उसमें रहता था। उसका नाम था पलित। बरगद के पेड़ पर लोमश नाम का बिलाव भी सुखपूर्वक रहता था। उसका आहार था पेड़ के पक्षी। उसी वन में एक बधिक रहता था। वह बरगद के नीचे शाम को जाल फैलाकर चला जाता था और सुबह आकर जाल में फंसे हुए जानवरों को लेकर चला जाता था। जानवर ही उसका भोजन था। एक दिन बरगद पर रहने वाला लोमश नामक का बिलाव भी अपनी असावधानी के कारण बधिक के जाल में फंस गया।

लोमश के फंस जाने पर पलित को बड़ी खुशी हुई। इसलिए वह बिल से निकलकर निर्भय होकर विचरने लगा। उसने देखा कि जाल पर मांस बिखरा है।

अतः वह उस पर चढ़कर मांस खाने लगा और जाल में फंसे हुए बिलाव पर मन–ही–मन हंसने लगा। इतने में चूहे की दृष्टि दूसरी तरफ घूम गयी और देखा कि एक भयंकर नेवला है। उस नेवले का नाम हरिण था। वह चूहे की गंध से वहां आ गया था। चूहे ने देखा कि ऊपर पेड़ की शाखा पर एक चंद्रक नामक उल्लू था जो उसी पेड़ के खोड़ले में रहता था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी। नीचे से नेवला और ऊपर से उल्लू चूहे को खाने की ताक में थे। इस प्रकार नेवले और उल्लू दोनों के लक्ष्य बने हुए चूहे को बड़ा भय हुआ।

चूहे ने सोचा कि आज मेरे ऊपर भारी संकट आ गया है और मेरी जान का जोखिम है; परंतु घबराने से काम नहीं बनेगा, किंतु धैर्य धरकर उपाय लगाना चाहिए। चूहे ने सोचा कि यदि मैं जमीन पर भागता हूं, तो मुझे नेवला खा लेगा, यदि यहीं ठहर जाता हूं तो उल्लू नोच खायेगा और जाल काटकर उसके भीतर घुस जाऊं तो बिलाव खा लेगा। परंतु मुझ बुद्धिमान को घबराना नहीं चाहिए। मैं युक्तिपूर्वक सहयोग का आदान–प्रदान करके जीवन बचाने की चेष्टा करूंगा। बुद्धिमान, विद्वान और नीतिनिपुण व्यक्ति विपत्ति आने पर घबराता नहीं है, अपितु उससे बचने का उपाय करता है।

चूहे ने सोचा कि बिलाव मेरा कट्टर शत्रु है, परंतु उसकी शरण के अलावा कोई बचाव का रास्ता नहीं है। बिलाव भी संकट में फंसा है। उसको मेरे सहयोग की आवश्यकता है। शायद दोनों दुखियारे एक–दूसरे के सहारे से अपना–अपना भला कर लें। अतएव इस मूर्ख को संधि के द्वारा स्वार्थ सिद्ध करने की बात पर राजी करूं। यह भी विपत्ति के कारण मुझसे संधि कर सकता है। नीति कहती है कि संकट से बचने के लिए शत्रु से संधि कर लेना चाहिए। विद्वान शत्रु अच्छा होता है, मूर्ख मित्र नहीं। मेरा जीवन तो आज बिलाव की शरण में है।

बिलाव जाल में फंसा पड़ा था। चूहे ने उसे कहा–भैया बिलाव! मैं तुमसे मैत्रीपूर्ण बात कर रहा हूं। तुम अभी जीवित हो न? मैं तुम्हारे जीवन की रक्षा चाहता हूं। इसमें मेरी और तुम्हारी दोनों की सुरक्षा है। तुम डरो मत। यदि तुम मुझे खा न जाओ, तो मैं तुम्हें बचा लूंगा। ऊपर उल्लू बैठा हू–हू करता मुझे खाना चाहता है और नीचे नेवला मुझ पर घात लगाये बैठा है। इनसे मैं भयभीत हूं। साधु पुरुष के साथ सात पग चलते ही मित्रता हो जाती है। हम और तुम तो यहां बहुत दिन से रह रहे हैं। अतएव मैं तुमसे अपनी मित्रता अवश्य निभाऊंगा। अब तुम्हें कोई भय नहीं है। हे बिलाव! तुम जाल में फंसे हो। मेरी सहायता के बिना तुम इससे नहीं छूट सकते हो। यदि तुम मुझे न

मारो तो मैं तुम्हारा जाल काट दूंगा। तुम पेड़ पर रहते हो और मैं पेड़ की जड़ में; अतएव हम दोनों इस वृक्ष के आधार में चिरकाल से रहते हैं। जो एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करते, धीरपुरुषों द्वारा वे प्रशंसा के भाजन नहीं होते। वे दोनों उद्वेगित रहते हैं। मैं और तुम-दोनों संकट में हैं और दोनों दोनों के सहायक बनकर संकट से बच सकते हैं। किसी लकड़ी के सहारे कोई मनुष्य नदी पार करता है, तो लकड़ी भी पार हो जाती है। इस प्रकार मैं और तुम एक-दूसरे को विपत्ति से पार करें।

बिलाव ने कहा-चूहा महाराज! मेरे और तुम्हारे दोनों के प्राण संकट में हैं। तुम मुझे बचाओ, मैं तुम्हारा प्रत्युपकार अवश्य करूंगा। मेरा मान भंग हो चुका है। मैं तुम्हारा भक्त और शिष्य हो चुका हूं। मैं सदैव तुम्हारा हित करूंगा। मैं तुम्हारी शरण में हूं। मैं तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहूंगा। चूहे ने कहा-भैया बिलाव! तुम बुद्धिमान हो, उदार हो, मैंने दोनों के कल्याण की बात सोची है, उसे सुनो। मैं इस नेवले से डरा हूं। इसलिए मैं इस जाल में घुस आऊंगा, परंतु दादा! मुझे तुम खा न लेना। मैं जीवित रहकर तुम्हें बचा पाऊंगा। मैं शपथ खाकर कहता हूं कि मैं जाल काटकर तुम्हें बचा लूंगा।

बिलाव ने कहा-भैया चूहे! तुम जल्दी जाल के भीतर आकर इसे काटो और मुझे इससे निकालो। मेरा जीवन तुम्हारे हाथ में है। इसके बदले मैं तुम्हारा सदा आज्ञाकारी रहूंगा। मैं अपने बंधु-बांधवों के साथ सदैव तुम्हारी सेवा में रहूंगा। कोई किसी के उपकार के बदले कितना ही सेवा करे, परंतु वह प्रथम उपकार के समान नहीं होता; क्योंकि उसने बिना कारण के उसका उपकार किया है और यह उपकार के बदले में उपकार किया है। इस प्रकार चूहे ने बिलाव से अपने मतलब की बात स्वीकार कराकर और उस शत्रु पर भी विश्वास करके उसकी गोद में जा बैठा और वह माता-पिता की गोद के समान बिलाव की छाती पर निर्भय होकर सो गया। चूहे को बिलाव के अंगों में छिपा हुआ देखकर नेवला और उल्लू उदास होकर चले गये।

चूहा देश और काल का ज्ञाता था, इसलिए वह बधिक के आने का समय देखकर धीरे-धीर जाल को काटने लगा। बिलाव ने देखा कि चूहा जाल काटने में जल्दी नहीं कर रहा है। अतएव उसने चूहे से कहा-सौम्य! तुम जाल काटने में जल्दी क्यों नहीं करते हो? क्या तुम्हारा काम बन गया? मेरी अवहेलना क्यों करते हो? बधिक आ रहा होगा। उसके आने के पहले जाल को काट दो। चूहे ने कहा-सौम्य! चुप रहो, घबराने की आवश्यकता नहीं है। मैं समय को ठीक से पहचानता हूं। समय आने पर मैं भूल नहीं करूंगा। समय के विरुद्ध किया

हुआ काम सफल नहीं होता, परंतु समयानुकूल किया जाने वाला काम सफल होता है। यदि तुम असमय में जाल से छूट गये, तो मुझे तुम्हीं से भय प्राप्त हो सकता है। इसलिए मित्र थोड़ा धैर्य धरो, जल्दी न मचाओ। जब मैं देख लूंगा कि बधिक आ रहा है, तब मैं तुरंत जाल काटकर तुम्हें बंधन से छुड़ा दूंगा। उस समय तुम छूटते ही पेड़ पर चढ़ोगे, तुम्हें अपने जीवन की रक्षा के सिवा और बात नहीं सूझेगी। लोमश! जब तुम त्रास और भय से पीड़ित होकर पेड़ पर भागोगे, तब मैं बिल में घुस जाऊंगा।

बिलाव ने चूहे की बात का मर्म समझा और बोला–श्रेष्ठ लोग अपने मित्र का काम प्रेम और शीघ्रता से करते हैं, तुम्हारी तरह नहीं। देखो, मैंने तुम्हें तुरंत ही संकट से बचा लिया था। इसी प्रकार तुम्हें भी जल्दी करना चाहिए। यदि तुम पहले के वैर का स्मरण कर यहां व्यर्थ समय काटना चाहते हो तो पापी! देख लेना, इसका फल बुरा होगा। यदि मैंने पहले अपने अज्ञानवश तुम्हारे लिए कोई अपराध किया हो, तो उसके लिए क्षमा करना। तुम मेरा काम जल्दी करो। चूहा बड़ा विद्वान था। वह देश–काल का ज्ञान रखता था। उसने कहा–भैया बिलाव! तुमने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जो कुछ कहा है उसे मैंने सुन लिया है। मैंने अपने मतलब की बात जो तुमसे कही है वह तुमने सुन ली है। जो भय से किसी का मित्र बना हो या बनाया गया हो, इन दोनों की रक्षा होनी चाहिए। जैसे सपेरा सर्प के मुख से हाथ बचाकर उसे खेलाता है, वैसे उन्हें अपनी रक्षा करते हुए एक–दूसरे का काम करना चाहिए। बलवान से संधि करके अपनी रक्षा का ध्यान न रखना, उसकी मित्रता अपथ्य भोजन की तरह दुखदायी होती है। न कोई किसी का मित्र है और न शत्रु। स्वार्थ से मित्र–शत्रु एक–दूसरे से बंधे हैं। जैसे पालतू हाथी द्वारा जंगली हाथी बांध लिए जाते हैं, वैसे स्वार्थ से स्वार्थ बंधते हैं। अपना काम पूरा हो जाने पर कोई भी दूसरे पर ध्यान नहीं देता। इसलिए सभी काम अधूरे रखना चाहिए। जब बधिक आ जायगा, तब तुम उसके डर से भागने लगोगे, फिर मुझे पकड़ नहीं सकोगे। मैंने सब तागे काट डाले हैं। केवल एक धागा बचा है। उसे भी मैं समय आने पर तुरंत काट डालूंगा, अतएव लोमश! घबराओ मत। इस प्रकार दोनों की बातचीत में रात बीत गयी। बिलाव के मन में भय समाया था। बिलाव तथा चूहे की मित्रता देखकर उल्लू और नेवला अपने शिकार से निराश होकर पहले ही चले गये थे। बधिक कुत्तों को लेकर जैसे वहां पहुंचा चूहे ने जाल का बचा एक तंतु काट दिया। अतएव बिलाव भागकर पेड़ पर चढ़ गया और चूहा तुरंत बिल में घुस गया। दोनों के प्राण बच गये।

बधिक ने जाल उलट-पुलटकर देखा तो उसने आज कोई शिकार न पाया और निराश होकर घर लौट गया। बिलाव लोमश भारी भय से मुक्त होकर पेड़ पर बैठे-बैठे बिल में बैठे अपने मित्र चूहे पलित से कहा-भैया! तुम मुझसे बातचीत किये बिना बिल में क्यों घुस गये? मैं तुम्हारा अत्यंत कृतज्ञ हूं। मैंने तुम्हारे प्राणों की रक्षा करके तुम्हारा भी हित किया है। तुम्हें मेरे प्रति कुछ शंका तो नहीं है? मित्र! तुमने संकट के समय मेरा विश्वास किया और मेरा जीवन बचाया। अब मैत्री के सुख का लाभ लेने का समय है। तुम मेरे पास क्यों नहीं आते हो। जो पहले मित्र बनाकर उसमें स्थिर नहीं रहता, वह पुनः कष्ट की स्थिति में उस मित्र का सहयोग नहीं पाता। मित्र! मैं और तुम अभिन्न मित्र हो गये हैं। अब तुम्हें मेरे साथ रहकर मित्रता का सुख भोगना चाहिए। मेरे मित्र तथा बंधु-बांधव तुम्हारी उसी प्रकार सेवा करेंगे, जैसे शिष्य अपने श्रद्धेय गुरु की करता है। मैं स्वयं भी तुम्हारा सदैव सत्कार करूंगा। जगत में कौन होगा जो अपने जीवनदाता का पूजा-सत्कार न करे। तुम मेरे शरीर और घर के मालिक हो जाओ। तुम मेरी सारी संपत्ति के स्वामी और व्यवस्थापक बनो। तुम मेरे मंत्री बनकर पिता की तरह मुझे उपदेश दो। मैं अपने जीवन की शपथ खाकर कहता हूं, तुम्हें हम लोगों की तरफ से कोई भय नहीं हो। तुम प्रत्यक्ष शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान हो। तुम उत्तम मंत्रणा देने के योग्य हो। तुमने मुझे मंत्रणा और जीवनदान देकर हमारे सहयोगियों के दिल पर अपना अधिकार जमा लिया है।

बिलाव की उत्तम शांतिपूर्ण बातें सुनकर बुद्धिमान चूहे ने अपनी कल्याणकारी बातें कहना शुरू किया-लोमश! तुम्हारी बातें मैंने ध्यान से सुनी हैं। अब मेरे हृदय की बातें तुम भी सुन लो। मित्र को समझना चाहिए और शत्रु को भी। शत्रु-मित्र की पहचान बड़ी बारीक है। समय बदलने पर कितने मित्र शत्रु तथा कितने शत्रु मित्र बन जाते हैं। आपस में समझौता कर लेने पर भी जब वे काम और क्रोध के अधीन हो जाते हैं तब यह समझना कठिन हो जाता है कि वे मित्र हैं कि शत्रु। न कोई मित्र है और न शत्रु, मतलब से सब शत्रु और मित्र होते रहते हैं। जो जिसके जीवन से अपना स्वार्थ मानता है और जिसके मरने पर अपनी हानि मानता है, वह तब तक उसका मित्र बना रहता है, जब तक स्थिति में उलटफेर न हो। न मैत्री स्थिर रहती है और न शत्रुता। स्वार्थ-संबंध से लोग मित्र-शत्रु होते रहते हैं। कभी-कभी मित्र शत्रु बन जाता है और शत्रु मित्र बन जाता है, क्योंकि स्वार्थ बड़ा बलवान है। जो मनुष्य स्वार्थ के संबंध का विचार किये बिना मित्रों पर विश्वास तथा शत्रुओं पर अविश्वास करता जाता है, और जो शत्रु-मित्र सबसे प्रेमभाव बनाने लगता है, वह चंचल बुद्धि का ही है।

चूहे ने आगे भी कहना जारी रखा–जो विश्वासपात्र न हो, उस पर विश्वास न करे और जो विश्वासपात्र हो, उस पर भी अधिक विश्वास न करे। वस्तुतः विश्वास से उत्पन्न भय मनुष्य को जड़ से नष्ट कर देता है। माता-पिता, पुत्र, मामा, भांजे, संबंधी और बंधु-बांधव से स्वार्थवश ही प्रेम होता है। पुत्र के पतित हो जाने पर माता-पिता भी उसे त्याग देते हैं। सब मनुष्य सदा अपनी ही रक्षा करना चाहते हैं। देखो, इस जगत में स्वार्थ ही सार है– *पश्य स्वार्थस्य सारताम्* (,)। बुद्धिमान लोमश! तुम आज जाल से छूट जाने के बाद कृतज्ञतावश मुझ अपने शत्रु को सुख पहुंचाने का अचूक उपाय खोज निकाले हो, इसका कारण क्या है? उपकार का बदला चुकाने की बात तो हमारी तुम्हारी समान ही हैं। मैंने तुम्हें संकट से बचाया और तुमने मुझे विपत्ति से बचाया। अब तो मैं कुछ करता नहीं हूं, तुम ही क्यों मेरे उपकार का बदला देने के लिए उतावले हो गये हो? तुम अपनी चपलता से ही जाल में फंसे थे। चपल प्राणी जब अपना ही हित नहीं कर पाता, तब दूसरे का क्या हित करेगा? चपल प्राणी सत्तानाश करता है।

तुम बड़ी मीठी बातें कह रहे हो। आज तुम मुझे बड़े प्यारे लगते हो। इसका क्या कारण है? कारण से ही कोई प्रेमपात्र या द्वेषपात्र बनता है। सारे जीव स्वार्थ के साथी हैं। कोई किसी का प्रिय नहीं है। दो सगे भाइयों और पति-पत्नी में भी जो आपसी प्रेम होता है, वह भी स्वार्थवश ही होता है। इस संसार में किसी का प्रेम स्वार्थ-रहित नहीं दिखता। कभी किसी स्वार्थ को लेकर भाई कुपित हो जाता है, और पत्नी रूठ जाती है जबकि उनका प्रेम जैसा आपस में है, दूसरे लोग उनसे वैसा नहीं करते। कोई सहयता करने से प्रिय होता है, कोई प्रिय बोलने से प्रिय होता है। कोई कार्यसिद्धि के लिए मंत्र, होम तथा जप करने से प्रिय बनता है। जो प्रेम जिस कारण से बनता है, उस कारण के स्थिर रहते तक वह प्रेम रहता है। कारण के समाप्त हो जाने पर प्रेम भी समाप्त हो जाता है। अब तुम्हारा प्रेम मेरे लिए केवल एक कारण से है कि तुम मेरे शरीर को खा लो। यह मैं अच्छी तरह समझता हूं।

समय कारण के स्वरूप को बदल देता है, और स्वार्थ समय के पीछे चलता है। विद्वान स्वार्थ को समझता है और साधारण मनुष्य विद्वान के पीछे चलते हैं। मैं समझता हूं कि तुम मुझे ठग नहीं सकते। तुम अपने स्वार्थ से मुझ पर स्नेह दिखा रहे हो। मैं भी अपना स्वार्थ समझता हूं। मित्रता-शत्रुता बादल की तरह क्षण-क्षण बदलने वाली है। स्वार्थवश शत्रु-मित्र बदलते रहते हैं। यह स्वार्थ का संबंध अत्यन्त चंचल है। कारण पाकर मेरी और तुम्हारी मित्रता हुई थी। अब

कारण समाप्त हो जाने पर मित्रता भी समाप्त हो गयी। तुम अपनी जाति से ही मेरे शत्रु हो। विशेष प्रयोजन से मेरे मित्र बन गये थे। उस कारण के समाप्त हो जाने पर तुम्हारी प्रकृति पुनः मेरे लिए शत्रुभाव से उदय हो गयी है। मैं शुक्राचार्य के नीतिशास्त्र को जानकर भी तुम्हारे कल्याण के लिए कैसे उस जाल में प्रवेश कर सकता था जिसमें तुम विद्यमान थे। उस समय मेरा और तुम्हारा काम हो गया। अब मेरे-तुम्हारे मिलने की बात समाप्त हो गयी। सौम्य! अब मुझे खा लेने के अलावा मेरे द्वारा तुम्हारा कोई काम बनने वाला नहीं है। मैं तुम्हारा अन्न हूं, तुम खाने वाले, मैं दुर्बल हूं, तुम बलवान। दोनों में बड़ा अंतर है। अतएव अब हम दोनों में मेलमिलाप असंभव है। तुम जाल से छूटने के बाद से अपना आहार खोज रहे हो। आहार की खोज में ही तुम जाल में फंसे थे। अब उससे छूटकर तुम भूख से पीड़ित हो। अब तुम शास्त्रीय बुद्धि के सहारे मुझे खाना चाहते हो। मैं जानता हूं कि तुम भूखे हो, यह तुम्हारे भोजन का समय है। अतएव मुझसे संधि के नाम पर भोजन की खोज में हो। अब मैं तुमसे नहीं मिलूंगा। यदि तुम मेरा उपकार मानते हो तो मेरी मंगलकामना करना। मैं भी तुम्हारी मंगलकामना करूंगा।

जो बलवान हो और पापी हो, वह यदि शांतभाव से रहता हो, तो भी मुझे उससे डरना चाहिए। मैं तुम्हें अपना सब कुछ दे सकता हूं, परंतु अपने आप को कभी नहीं दूंगा। अपनी रक्षा के लिए संतान, राज्य, रत्न, धन सब का त्याग किया जा सकता है। अपनी रक्षा के लिए अपना सर्वस्व त्यागा जा सकता है। यदि मनुष्य जीवित रहे, तो अपने बिछुड़े हुए ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त कर सकता है।

चूहे ने जब इस तरह अपने विचार कड़ी भाषा में सुनाया तो बिलाव ने लज्जित होकर मीठे शब्दों में अपनी नेकनीयत की सफाई दी, परंतु चूहा टस-से-मस न हुआ और उसने पुनः कहा-अब मैं तुम्हारे साथ मिल नहीं सकता। शुक्राचार्य ने दो गाथाएं कही हैं-जब अपने और शत्रु पर एक-सी विपत्ति आयी हो, तब निर्बल को सबल के साथ संधि करके बड़ी सावधानी से अपना काम निकालना चाहिए। काम हो जाने पर उस शत्रु पर विश्वास न करे। यह पहली गाथा है। दूसरी गाथा है-जो विश्वासपात्र न हो, उस पर विश्वास न करे, और विश्वासपात्र पर भी अधिक विश्वास न करे, अपने प्रति सदा दूसरों के मन में विश्वास उत्पन्न करे, किंतु स्वयं दूसरे पर विश्वास न करे। नीतिशास्त्र में किसी पर विश्वास न करना ही उत्तम माना गया है। इसलिए दूसरों पर विश्वास न करने में ही अपना भला है। विश्वास न करने पर दुर्बल भी शत्रुओं से अपने को बचा

लेता है, और विश्वास करने वाला बलवान भी शत्रु से मारा जाता है। बिलाव! तुम–जैसों से मुझे अपने को बचाना चाहिए और तुम्हें खुद बधिक से बचना चाहिए।

भीष्म ने कहा–राजन! भयभीत होकर भी निर्भय के समान तथा विश्वास न करते हुए विश्वास करने वाले के समान बरताव करे। कभी असावधान होकर न चले। यदि असावधान हुआ तो नष्ट होगा। समय पर शत्रु के साथ मेलमिलाप तथा मित्र के साथ युद्ध करना उचित है। नीति को जानकर भय आने के पहले भयभीत के समान आचरण करे। बलवान शत्रु के सामने डरे हुए के समान उपस्थित होना चाहिए। उसके साथ संधि भी कर लेना चाहिए। सावधान मनुष्य उद्योगशील रहता है। उसको संकट से बचने की युक्ति स्वयं सूझ जाती है। समझदार भय आने के पहले उससे सशंक रहता है। अतएव उसके सामने भय का अवसर नहीं आता। परंतु जो शंकारहित होकर दूसरों पर विश्वास कर लेता है, उसे बड़े भारी भय का सामना करना पड़ता है। चूहे और बिलाव का यह उपाख्यान कहा गया है, यह संधि और विग्रह का ज्ञान उत्पन्न कराने वाला है। राजा को इससे प्रेरणा लेकर सावधान रहना चाहिए (अध्याय)।

मीमांसा

उक्त प्रसंग राजाओं के लिए है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है– "प्राचीन राजशास्त्र में 'आत्मरक्षितकम्' नामक एक प्रकरण था। उसका सारांश यहां चूहे के मुख से कहलवाया गया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी यह प्रकरण है, पर उसका गठन इससे कुछ भिन्न है।"

आध्यात्मिक जीवन का रास्ता अलग है। वह है सबसे प्रेम रखना और सबसे सब समय निष्काम तथा निर्मोह रहना।

. शत्रु पर अविश्वास, राजा ब्रह्मदत्त तथा पूजनी चिड़िया का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! आपने कहा कि कहीं विश्वास न करे, तो राजा राज्य कैसे चला पायेगा? आपकी अविश्वास-कथा सुनकर मेरा मन भ्रम में पड़गया है। भीष्म ने कहा–ब्रह्मदत्त नाम के राजा थे। वे कांपिल्य नगर में राज्य

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

करते थे। उनके अंतःपुर में पूजनी नाम की एक चिड़िया रहती थी। एक ही दिन उस पूजनी चिड़िया ने बच्चा पैदा किया और रानी ने भी बच्चा पैदा किया। वह चिड़िया समुद्र क्षेत्र से प्रतिदिन दो फल लाती थी, जो पौष्टिक होते थे। वह एक फल अपने बच्चे को तथा एक फल राजकुमार को देती थी। वे फल अमृत के समान मीठे तथा बलवर्धक होते थे। एक दिन राजकुमार ने चिड़िया के बच्चे को पकड़ा और उससे खेलते-खेलते उसे मार डाला। चिड़िया को अपने बच्चे को मरा हुआ देखकर बड़ा दुख हुआ और कहने लगी–क्षत्रियों में अपने साथियों को निभाने की भावना नहीं होती। उनमें न प्रेम होता है और न सौहार्द। ये अपने स्वार्थ से ही दूसरे से मित्रता करते हैं। जब इनका काम निकल जाता है, तब विमुख हो जाते हैं। क्षत्रिय सबकी बुराई ही करते हैं। अतएव ये कभी विश्वास के योग्य नहीं होते। ये दूसरे का अहित करके उसे झूठी सांत्वना देते हैं। राजकुमार कैसा कृतघ्न है!

चिड़िया ने कुपित होकर अपने पंजों से राजकुमार की दोनों आंखें फोड़ दीं और आकाश में उड़कर एक ऊंचे स्थान पर जा बैठी और उसने राजा से कहा–राजन! अपने पापकर्म का फल तत्काल मिलता है। पाप का बदला मिल जाने पर भी पूर्वकृत कर्म मिटते नहीं हैं। यदि यहां किये हुए कर्म का फल मिलता हुआ न दिखायी दे तो यह समझना चाहिए कि उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों को उसका फल मिलेगा।

राजा ब्रह्मदत्त को लगा कि मेरे राजकुमार की दोनों आंखें चली गयीं। यह उसके अपने कर्मों का फल है। अतएव वह क्रोधित नहीं हुआ और पूजनी चिड़िया से बोला–मेरे पाप का बदला तूने ले लिया। अब दोनों बराबर हो गये। अब तुम यहीं रहो, कहीं अन्यत्र मत जाओ।

पूजनी चिड़िया ने कहा–राजन! एक बार किसी का अपराध करके, फिर वहीं रहना उचित नहीं है। उसका वहां से भाग जाने में ही हित है। जहां किसी से वैर बंध जाय, वहां विरोधी की मीठी बातों में विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वैर की आग नहीं बुझती। ऐसी जगह विश्वास करने वाला मूर्ख मारा जाता है। आपसी वैर पीढ़ी-दर-पीढ़ी पीड़ित करता है। यहां तक परलोक में भी वैर साथ नहीं छोड़ता। आपसी वैर की स्थिति में यही कल्याणप्रद है कि वहां विश्वास न करे। विश्वासघातियों का तो विश्वास करना ही नहीं चाहिए। जो विश्वासपात्र न हो उस पर विश्वास न करे और विश्वासपात्र पर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वास से उत्पन्न भय विश्वास करने वाले की जड़ उखाड़ देता है। अपने पर दूसरे के मन में भले ही विश्वास उत्पन्न कराने की चेष्टा करे, परंतु स्वयं उस पर विश्वास न करे।

"बंधु–बांधवों में माता–पिता श्रेष्ठ हैं। पत्नी शक्ति का नाशक होने से वृद्धावस्था का मूर्तिमान स्वरूप है, पुत्र वीर्य का एक अंश है। भाई धन बटाता है, इसलिए वह शत्रु माना जाता है और मित्र तभी तक मित्र रहता है जब तक उसका हाथ गीला रहता है, अर्थात उसका स्वार्थ चलता है। केवल आत्मा ही सुख–दुख का भोक्ता है।" जब आपसी वैर हो जाय, तब वहां रहना ठीक नहीं। मैं जिस कारण से यहां रहती थी, वह उद्देश्य तो समाप्त हो गया है। जो पहले बुरा कर्म कर डालता है, वह दान–मान से पूजित हो, तो भी उसका मन विश्वस्त नहीं होता। अपना किया हुआ बुरा कर्म दुर्बल प्राणी को भयभीत करता रहता है। जहां पहले सम्मान मिला हो, यदि वहां पीछे अपमान मिलने लगे, तो पुनः सम्मान मिलने पर भी समझदार को वहां नहीं रहना चाहिए। अतएव राजन! मैं अब यहां नहीं रह सकती।

राजा ब्रह्मदत्त–किसी के अपराध करने पर कुछ करके बदला लेने वाला कोई अपराधी नहीं है। इससे तो पहले का अपराधी ऋणमुक्त हो जाता है। अतएव पूजनी! तुम कहीं न जाकर यहीं रहो।

पूजनी–परस्पर अपराध करने वाले दो व्यक्तियों का पुनः मेलमिलाप नहीं हो सकता। क्योंकि उन दोनों के अपराध कर्म उन्हें खटकते रहते हैं।

राजा ब्रह्मदत्त–पूजनी! बदला ले लेने पर वैर शांत हो जाता है। अतः दोनों में मेल हो सकता है।

पूजनी–इस प्रकार वैर शांत नहीं होता। शत्रु की दी हुई सांत्वना पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ऐसा विश्वास जान का जोखिम है। वहां मुंह न दिखाना ही अच्छा है। जो लोग बल और तीखे शस्त्रों से भी वश में नहीं हो सकते, उन्हें मीठे वचनों में फंसा लिया जा सकता है, जैसे शिक्षित हथिनी से जंगली हाथी को वश में कर लिया जाता है।

राजा ब्रह्मदत्त–प्राणघाती लोग भी यदि एक साथ रहने लगें तो उनमें परस्पर प्रेम हो जाता है, जैसे बधिक के साथ रहने वाले कुत्तों का स्नेह हो जाता है। एक साथ रहने से वैर शांत हो जाता है, जैसे कमल–पत्र पर जलबुंद नहीं ठहरता।

पूजनी–वैर पांच कारणों से होता है, इसे विद्वान ठीक से जानते हैं– . स्त्री के लिए, . धन, घर और जमीन के लिए, . कटु वाणी के कारण,

---

. **माता पिता बांधवानां वरिष्ठौ भार्या जराबीजमात्रं तु पुत्रः।**
भ्राता शत्रुः क्लिन्नपाणिर्वयस्य आत्मा ह्येकः सुखदुःखस्य भोक्ता
(शान्ति पर्व, अ० , श्लोक)

. जातिगत द्वेष के कारण तथा . किसी समय किये हुए अपराध के कारण– *स्त्रीकृतम्, वास्तुजम्, वाग्जम्, ससापत्नापराधजम्* (,)। जिसने वैर बांध लिया हो, ऐसे मित्र पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। जैसे लकड़ी के भीतर आग छिपी रहती है, वैसे उसके हृदय में वैर छिपा रहता है। जैसे बड़वानल जल में रहकर भी शांत नहीं होता, वैसे क्रोध की आग न धन से शांत होती है, न कठोरता दिखाने से, न मीठे वचनों द्वारा समझाने से और न शास्त्रों के ज्ञान से शांत होती है। वैर की आग एक पक्ष को जलाकर शांत होती है। इसलिए मैं आपके घर में नहीं रह सकती।

राजा ब्रह्मदत्त–पूजनी! काल ही सब कार्य करता है। इसमें कौन किसका अपराध करता है? जन्म और मृत्यु सामान्य रूप से चलते रहते हैं। इन्हें काल ही कराता है। इसलिए प्राणी जीवित नहीं रह पाता। कुछ प्राणी एक साथ मरते हैं, कुछ एक–एक कर के मरते हैं। बहुत लोग लम्बे समय तक नहीं मरते। जैसे आग ईंधन को जला देती है, वैसे काल प्राणियों को मारता रहता है। शुभे! एक–दूसरे के प्रति किये गये अपराध में न तुम सही कारण हो और न मैं। काल के अधीन ही यह सब होता है। तू मेरे अपराध को क्षमा कर और मैं तेरे अपराध को क्षमा करता हूं। तुम यहीं रहो।

पूजनी–राजन! यदि आप काल को ही सर्वेसर्वा मानते हैं, तब तो किसी का किसी से वैर नहीं होना चाहिए। यदि काल से मृत्यु, दुख, सुख, उन्नति–अवनति आदि होते हैं, तो पूर्वकाल में देवों और असुरों में क्यों वैर हुआ? वैद्य रोगियों की चिकित्सा तथा औषध क्यों करते हैं? यदि काल सबको पका रहा है, तो औषधियों का क्या प्रयोजन है? यदि काल ही प्रमाण है, तो लोग दुख से व्यथित होकर क्यों हाय–तौबा करते हैं? काल ही श्रेष्ठ है तो कर्मों में विधि–निषेध की बात क्यों है? नरेश! आपके बच्चे ने मेरे बच्चे को मार डाला और मैंने आपके बच्चे की आंखें फोड़ दीं। इसके बाद तो आप मुझे मार डालेंगे। जैसे मैंने पुत्रशोक में पड़कर आपके पुत्र की आंखें फोड़ दीं, वैसे आप भी पुत्रशोक में पड़कर मेरा वध कर सकते हैं। मेरी सत्य बातें सुनिये! मनुष्य खेलने और खाने के लिए ही पक्षियों को पालता है। वध और बंधन में डालने के अलावा पक्षियों का प्रयोजन क्या है? वस्तुतः वध और बंधन के भय से ही मुमुक्षु मोक्ष–शास्त्र का आश्रय लेते हैं। वेदवेत्ता जन्म–मरण का चक्र दुखदायी बताते हैं। सबको अपने प्राण प्रिय होते हैं, सबको अपने पुत्र प्यारे लगते हैं। सब लोग दुख से व्याकुल होते हैं और सभी केवल सुख चाहते हैं। दुख के अनेक रूप हैं। बुढ़ापा दुख है, धन का नाश दुख है, अप्रियजनों का साथ दुख है तथा प्रिय–वियोग दुख

है। स्त्री के कारण दुख होता है। पुत्र–मरण में दुख होता है। यदि पुत्र दुष्ट हो जाय तो दुख होता है। कुछ मूर्ख लोग कहते हैं कि दूसरे के दुख से दुख नहीं होता। जो अपने और पराये के दुख का मर्म जानता है, वह ऐसा नहीं कहता। नरेश! आपने और मैंने जो परस्पर अपराध किये हैं वे सैकड़ों वर्षों में भी भुलाये नहीं जा सकते। अतएव आपसे अब मेरा मेल नहीं हो सकता। अपने पुत्र का दुख याद करके आपका वैर ताजा होता रहेगा। इसलिए मरणांत वैर ठन जाने पर पुनः प्रेम करना वैसे असंभव है जैसे मिट्टी का बरतन टूट जाने पर पुनः नहीं जुड़ता। विश्वास दुखदायी है, यही नीतिशास्त्रों का मत है। शुक्राचार्य ने प्रह्लाद से दो गाथाएं कहीं हैं–जैसे सूखी घास से ढके हुए गड्ढे पर रखे हुए मधु को लेने वाले मनुष्य मारे जाते हैं, वैसे वैरी की झूठी या सच्ची बात पर विश्वास करने वाले बेमौत मरते हैं। जब किसी कुल में दुखदायी वैर बंध जाता है तब वह शांत नहीं होता। उसकी याद दिलाने वाला कोई–न–कोई रहता ही है। दुष्ट लोग मन में वैर रखकर ऊपर से मीठी बातें बोलते हैं, फिर अवसर पाने पर उसी प्रकार पीस डालते हैं जिस प्रकार पानी से भरे हुए मिट्टी के घड़े को पत्थर पर पटककर चूर–चूर कर दिया जाता है। राजन! किसी का अपराध करके फिर उस पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। जो दूसरे का अपकार करके उस पर विश्वास करता है उसे दुख भोगना पड़ता है।

राजा ब्रह्मदत्त–अविश्वास से तो मनुष्य कहीं भी सफल नहीं हो सकता। यदि एक पक्ष से मन में सदा भय बना है, तो मनुष्य मृतवत है। उसका जीवन मिट्टी है।

पूजनी–राजन! दोनों पैरों में घाव वाला मनुष्य कितना ही बचाकर चले, दौड़ने से उनमें पुनः घाव हो ही जायगा। रोगी–नेत्रों से हवा के झोंके की तरफ देखने से नेत्र दुखेंगे ही। जो अपनी शक्ति समझे बिना दुर्गम पथ पर चल देगा, उसका जीवन उसमें समाप्त होना ही है। बिना वर्षा के खेत जोतने से उससे अन्न नहीं मिलता। तीता, कसैला, स्वादिष्ट, मधुर आदि जैसा भी हो हितकर भोजन करता है, वही भोजन उसके लिए अमृत के समान लाभकारी होता है, और जो परिणाम का विचार किये बिना अहितकर भोजन करेगा, वह मरेगा ही। दैव (भाग्य) और पुरुषार्थ (प्रयत्न), दोनों एक दूसरे के सहारे रहते हैं। उदार मनुष्य सदैव सत्कर्म करते हैं और नपुंसक मनुष्य दैव की उपासना में लगे रहते हैं– *"उदाराणां तु सत्कर्म दैवं क्लीबा उपासते"* (,)। चाहे कोमल हो या कठोर, हितकर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म न करने वाला दरिद्र बना रहता

है। अतएव काल, दैव और स्वभाव आदि का भरोसा छोड़कर पराक्रम करना चाहिए। मनुष्य अपने हितकर काम में पूर्ण समर्पित होकर पराक्रम करे। विद्या, वीरता, दक्षता, बल और धैर्य मनुष्य के स्वाभाविक मित्र हैं। समझदार इनके द्वारा सारा काम करते हैं। घर, धातु, खेत, स्त्री और मित्र उपमित्र हैं। इन्हें मनुष्य कहीं भी पा सकते हैं। विवेकवान सर्वत्र आनंद से रहता है। वह सब जगह शोभा पाता है। उसे कोई भयभीत नहीं कर सकता। वह किसी के भय देने से भयभीत नहीं होता। बुद्धिमान थोड़े धन में रहकर भी प्रतिष्ठित होता है। वह कुशल बुद्धि और संयम से सम्मानित होता है। घर के मोह में फंसे हुए पुरुष को कुटिल स्त्री सुखा डालती है जैसे केकड़े की मादा को उसकी संतानें ही नष्ट कर देती हैं।

राजन! उलटी बुद्धि का मनुष्य घर, खेत, मित्र और अपने देश आदि की चिंता में ग्रस्त होकर सदा दुखी रहता है। जन्मस्थान में यदि मनुष्य व्याधि और दुर्भिक्ष से ग्रस्त है, तो अन्यत्र जाकर निर्वाह-धंधा करना चाहिए। यदि वहां रहना ही हो तो, सम्मानित होकर रहे। भूपाल! तुम्हारे पुत्र के साथ मैंने दुष्टता का बरताव किया है, इसलिए मैं यहां रहने का साहस नहीं कर सकती। दूसरी जगह चली जाऊंगी। दुष्टा पत्नी, दुष्ट पुत्र, कुटिल राजा, दुष्ट मित्र, दूषित संबंध और दुष्ट देश को दूर से ही त्याग देना चाहिए। कुपुत्र पर विश्वास तथा दुष्टा पत्नी पर प्रेम कैसे हो सकता है? कुटिल राजा के राज्य में कभी शांति नहीं मिल सकती और दुष्ट देश में जीवन सुख से नहीं रह सकता। कुमित्र का प्रेम स्थिर नहीं होता। दूषित संबंध में अपमान मिलना ही है। पत्नी वही उत्तम है जो प्रियभाषी हो, वही पुत्र अच्छा है जिससे अपना उत्तरदायित्व हलका हो। मित्र वह है जो विश्वसनीय हो और देश वह है जहां जीविका सुलभ हो। राजा के तीव्र शासन का अर्थ है कि उसके राज्य में बलात्कार नहीं होता हो, किसी प्रकार का भय न हो। राजा प्रजापालक होना चाहिए। गुणवान तथा धर्मपरायण राजा के राज्य में लोग उत्तम गुण से संपन्न होते हैं। अधार्मिक राजा से प्रजा का नाश होता है। राजा ही धर्म, अर्थ और काम का मूल है। अतएव उसे सावधान होकर प्रजा का पालन करना चाहिए। जो राजा प्रजा की आय में से छठां भाग लेकर उपभोग करता है और प्रजा का पालन नहीं करता है, वह चोर है। जो राजा प्रजा को अभयदान देकर धन के लोभ से उसका पालन नहीं करता है, वह नरक में जाता है। जो राजा प्रजा को अभयदान देकर उसका पालन करता है, वह प्रशंसनीय है।

प्रजापति मनु ने राजा के सात गुण बताये हैं। राजा माता, पिता, गुरु, रक्षक, अग्नि, कुबेर और यम हैं। वह प्रजा पर कृपा करने से पिता, दीन-दुखियों तथा

प्रजा का पालन करने से माता, क्रूरों को भस्म करने से अग्नि, दुष्टों का दमन करने से यम, प्रजा की सेवा में धन खर्च करने से कुबेर, धर्म का उपदेश करने से गुरु तथा प्रजा का संरक्षण करने से रक्षक है। जो राजा अपने सद्व्यवहार से प्रजा को प्रसन्न रखता है, उसका राज्य स्थिर होता है। जो राजा नगर और गांवों के लोगों का सम्मान करता है, वह सर्वत्र सफल है। जिसकी प्रजा टैक्स के भार से नित्य पीड़ित रहती हो, और नाना अनर्थों से दुखी हो, उस राजा का पराभव हो जाता है। जिसकी प्रजा फलती–फूलती हो वह सफल होता है। राजन! बलवान से युद्ध छेड़ना अनुचित है। जिसने बलवान के साथ झगड़ा ठान लिया उसके लिए न राज्य है और न सुख है।

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! राजा ब्रह्मदत्त से उपर्युक्त बातें कहकर पूजनी चिड़िया उनसे विदा लेकर अपनी इच्छित दिशा को उड़ गयी (अध्याय)।

मीमांसा

इस कथा का भी सार यह है कि राजा को बलवान शत्रु का विश्वास नहीं करना चाहिए। यहां तक कि किसी का भी विश्वास न करना चाहिए, अपितु सबसे सशंक रहना चाहिए।

अध्यात्म का रास्ता है कि सबसे प्रेम रखना चाहिए, किंतु मोह किसी का नहीं रखना चाहिए।

. भारद्वाज कणिक की तीखी राजनीति

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! सत्युग, त्रेता और द्वापर समाप्त हो रहे हैं; धर्म क्षीण हो चला है। लुटेरे तथा डाकू धर्म में बाधा डाल रहे हैं। ऐसी स्थिति में कैसे रहना चाहिए? भीष्म ने कहा–राजन! मैं आज के युग के योग्य राजा का बरताव बता रहा हूं, जिसमें वह दया का त्याग करके समय के अनुकूल बरताव करे। सौवीर देश के राजा शत्रुंजय को भारद्वाज कणिक नाम के ब्राह्मण ने जो राजनीति बतायी थी, उसे कहता हूं। राजा शत्रुंजय ने कणिक के पास जाकर पूछा–अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कैसे होती है, प्राप्त वस्तु की वृद्धि कैसे हो, बढ़ी हुई संपत्ति की रक्षा कैसे हो और सुरक्षित धन का सदुपयोग कैसे करें?

ब्राह्मण भारद्वाज कणिक ने कहा–राजन! राजा दण्ड देने पर सदैव तैयार रहे और सदा ही प्रयत्नशील हो। राजा अपनी दुर्बलता को दूर कर दे और शत्रु

की दुर्बलता बारीकी से देखता रहे और अनुकूल समय पाकर उस पर आक्रमण कर दे। जो राजा दंड देने के लिए सदा तैयार रहता है उससे प्रजा डरती है। अतएव राजा दंड के द्वारा प्रजा को वश में रखे। साम, दाम, भेद से दंड ही श्रेष्ठ है। मूल के नष्ट हो जाने पर आश्रयहीन शत्रु का निर्वाह नहीं होगा, अतः वह नष्ट हो जायगा। अतएव शत्रु की जीवनवृत्ति का नाश कर दे, फिर वे अपने सहायक तथा कुल-परिवार सहित नष्ट हो जायंगे।

संकटकाल में अच्छी मंत्रणा करके घोर युद्ध करे, अवसर विपरीत आने पर युद्ध से भाग खड़ा हो। राजा की केवल बातचीत कोमल हो। वह अपने हृदय को छुरे की धार की तरह तीखा बनाये रखे। काम-क्रोध को त्यागकर मुस्कराकर बोले। शत्रु के साथ संधि करके भी उस पर विश्वास न करे। अपना काम बन जाने पर हट जाय। शत्रु को मित्र की तरह मीठे वचनों से सांत्वना देता रहे, परंतु जैसे सांप से लोग डरते हैं, वैसे उससे डरता रहे। दुखियों को सांत्वना दे, दुर्बल बुद्धि वालों को भविष्य में लाभ होने की आशा दे तथा धन देकर भी संतुष्ट करे। ऐश्वर्य चाहने वाला राजा समय के अनुसार शत्रु के सामने हाथ जोड़े शपथ खाये, आश्वासन दे और उसके चरणों में अपना सिर झुकाकर बात करे। यहां तक कि उसे धैर्य देकर उसके आंसू पोंछे। जब तक अनुकूल अवसर न आये तब तक यदि जरूरी हो तो शत्रु को अपने कंधे पर बैठाकर ढोये, परंतु अनुकूल अवसर आने पर उसे उसी प्रकार दे मारे, जैसे मिट्टी के घड़े को पत्थर पर पटककर कोई चूर-चूर कर दिया हो। दो ही घड़ी सही, सूखी लकड़ी की तरह धधककर जलना अच्छा है, भूसी की तरह धुआं देकर सुलगना अच्छा नहीं है। अर्थात शत्रु से घोर युद्ध करे, ढील-ढाल लड़ाई न करे।

कृतघ्न का साथ न करे। किसी का काम पूरा न करे क्योंकि प्रयोजन रखने वाले से ही काम लेना है। जब उसका काम पूरा हो जायगा तब वह तुम्हारी उपेक्षा कर देगा। इसलिए दूसरे के सारे काम अधूरा रखे। कोयल, सुअर, पर्वत, शून्यगृह, नट तथा प्रेमी मित्र, इनके उत्तम गुण राजा काम में लावे। कोयल से मीठे वचन, सुअर से आक्रमण, पर्वत से ऊंचा उठना, सूने घर से अनेक को आश्रय देना, नट से कार्यकुशलता से दूसरे को रिझाना, प्रेमी मित्र से हित-परायणता सीखे। राजा शत्रु को अपनी मंगलकामना करे। आलसी, कायर, अभिमानी, लोकचर्चा से डरने वाले तथा समय की प्रतीक्षा में बैठे रहने वाले सफलता नहीं पा सकते। राजा बगुले के समान एकाग्र, सिंह के समान पराक्रम वाला, भेड़िये के समान लूटने वाला तथा बाण के समान टूट पड़ने वाला रहे। राजा शराब, जुआ, स्त्री तथा संगीत का अनासक्त होकर संयमपूर्वक सेवन करे। ये चारों अनिष्टकर हैं। राजा हिरन के समान चौकन्ना होकर सोये, समय से अंधे

बने रहने का दिखावा करे और समय आने पर बहरा भी बन जाय। देश–काल पाकर अपना पराक्रम दिखावे। अपना समय तथा बल देखकर शत्रु से युद्ध या संधि करे। शत्रु को अपने वश में पाकर उसे नष्ट कर दे, अन्यथा अपनी ही मृत्यु रखी है।

नीतिज्ञ राजा ऐसे वृक्ष के समान रहे जिसमें फूल तो बहुत हों, किंतु फल न हो। फल लगने पर भी उन्हें तोड़ना कठिन हो। वे फल दिखें पके हुए, परंतु तथ्य में कच्चे हों। राजा अपने शत्रु की आशा पूर्ण करने में विलंब करे, उसमें विघ्न डाल दे। उस विघ्न का कुछ कारण बता दे और उसे युक्तिसंगत सिद्ध करे। जब तक अपने ऊपर भय न आवे तब तक डरे हुए की भांति उसे टालने का प्रयास करे, परंतु जब सामने आ जाय तब शत्रु पर निडर होकर प्रहार करे। प्राणसंकट का कष्ट स्वीकार किये बिना अभीष्ट फल नहीं मिलता है। प्राणसंकट में पड़कर यदि जीवित रह गया, तो वह अपना भला देखता है। आगामी संकट को टालने तथा आये हुए संकट को दबाने की चेष्टा करे। दबे हुए भय से असावधान न हो। उसे पूरा मिटाने की चेष्टा करे। वर्तमान के सुख को त्यागना और भविष्य में मिलने वाले सुख की आशा करना बुद्धिमानी नहीं है। शत्रु के साथ संधि करके निश्चिंत होकर न सोवे। शत्रु से सदैव सावधान रहे। मनुष्य अपने आप का दीन–दशा से उद्धार करे, उसके लिए कोमल या कठोर जैसा उपाय करना पड़े। फिर शक्तिशाली होकर धर्म का आचरण करे।

राजा शत्रु के शत्रु का आदर करे। शत्रु के द्वारा अपने ऊपर लगाये गये गुप्तचर को पहचानने का प्रयत्न करे। अपने राज्य में तथा शत्रु के राज्य में गुप्तचर नियुक्त करे। उन्हें कोई पहचान न सके। शत्रु के राज्य में पाखंड वेषधारियों के रूप में गुप्तचर भेजना चाहिए। गुप्तचर बगीचे, भ्रमणस्थल, पौशाला, धर्मशाला, मदिरालय, नगर–प्रवेश–द्वार, तीर्थस्थान तथा सभाभवन में विचरण करें। यहां ऐसे लोग आते हैं जो कपटपूर्ण धर्माचारी हैं, पापाचारी हैं, चोर और दुष्ट हैं। उनका पता लगाकर उनको कैद कर ले। उनमें भय दिखाकर उनको पाप से छुड़ाये। जो विश्वासपात्र नहीं है, उन पर कभी विश्वास न करे और जो विश्वासपात्र हैं, उन पर भी बड़ा विश्वास न करे। अधिक विश्वास भयदायक होता है। अतएव बिना परीक्षा विश्वास न करे। शत्रु को विश्वास दे और जब उसे कमजोर पावे तब उस पर चढ़ बैठे। जो संदेह करने योग्य न हो उस पर भी संदेह रखे। जो संदेहास्पद हों उनसे सदैव सावधान रहे। संदेह–रहित की ओर से जो भय आता है वह जड़मूल से नाश करता है। अतएव सबसे सावधान रहे।

शत्रु के लिए हित का भाव दिखावे, मौन व्रत लेकर गेरुआ वस्त्र पहनकर और जटा–मृगचर्म धारणकर शत्रु के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करावे

और जब उनको विश्वास हो जाय, तब मौका देखकर उनके ऊपर भेड़िये की तरह टूट पड़े। ऐश्वर्य चाहने वाले राजा के यदि पुत्र, भाई, पिता या मित्र अपने प्रयोजनसिद्धि में बाधा करें तो उन्हें भी मार डाले। गुरु भी कर्तव्य-अकर्तव्य न समझकर गलत मार्ग पर चलता है, तो उसे भी दंड देना चाहिए। दंड ही उसे रास्ते पर लगायेगा। शत्रु के आने पर उठकर उसका स्वागत करे, उसका अभिवादन करे और कोई महत्त्वपूर्ण भेंट करे। इन मधुर बरताओं से पहले उसको वश में करे। इसके बाद समय आने पर उसके साधन और साध्य को उसी प्रकार नष्ट करे जिस प्रकार पक्षी अपनी तीखी चोंच से फल नोच डालता है। राजा बड़ा ऐश्वर्य तब तक नहीं पा सकता है, जब तक वह मछलीमार की तरह दूसरे के मर्म को विदीर्ण नहीं करता और अत्यंत क्रूर कर्म नहीं करता। जन्म से न कोई शत्रु होता है और न मित्र, शक्ति आने पर शत्रु-मित्र बनते हैं। शत्रु करुणापूर्वक वचन बोलता हो तो भी उसे मारना चाहिए। अपना अपकार करने वाले को अवश्य मार डाले, इसमें दया-मया की जरूरत नहीं है। ऐश्वर्य चाहने वाला राजा दोषदृष्टि छोड़कर लोगों को अपने पक्ष में मिलाये रखने का प्रयत्न करता रहे और दूसरे पर कृपा करने का प्रयत्न करता रहे, साथ-साथ शत्रुओं को रगड़ता रहे।

शत्रु पर प्रहार करने के पहले भी उससे मीठा बोले तथा प्रहार करने के बाद भी उससे मीठा बोले। तलवार से शत्रु का सिर काटकर भी उसके लिए रोये और शोक प्रकट करे। ऐश्वर्य चाहनेवाला राजा मीठा बोले, दूसरों का सम्मान करे और सहनशील होकर लोगों को अपने पास आने के लिए निमंत्रित करे। यही जनता की आराधना एवं सम्मान है। ऐसा अवश्य करना चाहिए। सूखा वैर करना और बांहों से बड़ी नदी तैरकर पार जाने का मंसूबा करना निरर्थक और आयुनाशक है। यह तो वैसे है जैसे कुत्ता गाय का सींग चबाये जिससे उसके दांत तो रगड़ उठेंगे और उसे रस नहीं मिलेगा।

धर्म, अर्थ और काम के सेवन में लोभ, मूर्खता और दुर्बलता बाधक है। धर्म से शांति मिलती है, अर्थ से सर्वहितकारी कर्म होते हैं और काम से भोग होते हैं, परंतु जब उक्त बाधाओं से बचे। अग्नि, ऋण और शत्रु यदि ये थोड़े भी रह जाते हैं तो ये आगे बढ़ते हैं; अतएव इनको पूरा उच्छिन्न कर देना चाहिए। ऋण, शत्रु और रोग यदि थोड़ा भी बचे हैं, तो भय उत्पन्न करेंगे। जो काम हाथ में ले उसे पूरा करके छोड़े और सदैव सावधान रहे। शरीर में गड़े हुए कांटे का थोड़ा अंश भी यदि शरीर में रह जाता है तो विकार ही पैदा करता है। मनुष्यों को मार कर, सड़कें तोड़कर, मकानों को नष्ट-भ्रष्ट कर शत्रु के देश को नष्ट करे। राजा गीध के समान दूर तक देखे, बगुले के समान अपने लक्ष्य पर एकाग्र

रहे, कुत्ते के समान सावधान रहे और सिंह के समान बल प्रकट करे। वह उद्वेगित न हो, कौए के समान चौकन्ना रहकर दूसरे की चेष्टा पर ध्यान रखे, और जैसे सर्प दूसरे के बिल में घुस जाता है, वैसे शत्रु के छिद्र को जानकर उस पर आक्रमण कर दे।

बलवानों के सामने हाथ जोड़कर विनम्र हो जाय, डरपोकों को भय दिखाकर उन्हें फोड़ ले, लोभी को धन देकर अपने वश में कर ले और जो बराबर का हो, उससे लड़ जाय। राजा देखे कि सेना तथा सेवकों में दलबंदी तथा भेदनीति चल रही है, तो अपने मंत्रियों को सम्हाले। ध्यान रखे कि वे न फूटने पायें तथा लोगों की दलबंदी जल्दी से तोड़ दे। राजा यदि सब समय कोमल रहता है तो लोग उसकी अवहेलना करते हैं और यदि वह सदैव कठोर बना रहता है तो लोग उससे उद्विग्न रहते हैं। अतएव राजा को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार कोमल और कठोर बने, सब समय नहीं। "कोमल उपाय से कोमल शत्रु का नाश करे और कोमल उपाय से ही दारुण शत्रु का भी नाश करे। कोमल उपाय से कोई काम करना कठिन नहीं है; अतएव कोमल ही बहुत तेज होता है।" जो समयानुसार कोमल या कठोर बनकर काम करता है, उसका सब काम ठीक होता है। बुद्धिमान पुरुष का विरोध करके यह न समझे कि मैं तो उससे दूर हूं, वह मेरा क्या करेगा। वस्तुतः बुद्धिमान की बाहें बड़ी लंबी होती हैं। उसके द्वारा किये गये प्रतिकार का परिणाम बड़ा दूरगामी होता है। बुद्धिमान की मार लम्बी होती है। जिस नदी को तैरकर न पार कर सके, उसमें न उतरे, ऐसे धन का अपहरण न करे जिसको शत्रु पुनः वापस ले ले। ऐसे वृक्ष अथवा शत्रु को खोदने की इच्छा न करे, जिसकी जड़ उखाड़ना संभव न हो। इसी प्रकार उस शत्रु पर तलवार न उठावे जिसका मस्तक धड़ से काटकर न गिरा सके।

यह जो मैंने दुश्मनों के साथ पापपूर्ण बरताव करने की राय दी है, इसे राजा संपत्ति तथा ऐश्वर्य–काल में आचरण में न लावे। परंतु यदि दुश्मन ऐसे ही बरताव द्वारा अपने ऊपर संकट उपस्थित करे, तब उसके बदले में इन उपायों का प्रयोग क्यों न करें? राजन! मैंने तुम्हारे हित के लिए ये सब बातें बतायी हैं।

हित चाहने वाले ब्राह्मण भारद्वाज कणिक की कही हुई इन बातों को सुनकर सौवीरनरेश शत्रुंजय ने उनका यथायोग्य पालन किया, जिसके परिणाम में वे बंधु–बांधवों सहित राज्यलक्ष्मी का उपभोग करने लगे (अध्याय)।

. **मृदुनैव मृदुं हन्ति मृदुना हन्ति दारुणम्।**
नासाध्यं मृदुना किंचित् तस्मात् तीक्ष्णतरो मृदुः ,

मीमांसा

सत्युग, त्रेता तथा द्वापर बीता जा रहा है इसलिए अत्याचार है, यह भ्रम है चारों युगों के संबंध में लाखों वर्षों की जो पौराणिक कल्पना है, यह कुल डेढ़-दो हजार वर्षों की है। इसके पहले यह कल्पना थी ही नहीं। इसीलिए यह वेद तथा वैदिक साहित्य में नहीं है। वेदों में युग शब्द जुआठा, जोड़ा या दस वर्ष की अवधि के लिए है।

भारद्वाज कणिक का उपदेश खून-खराबा, हत्या और अत्याचार का है। अनेक राजे-महाराजे, बादशाह तथा सुल्तान ऐसा क्रूर व्यवहार करते थे। हिन्दुओं, मुसलमानों, अंग्रेजों सब में ऐसे राजा अपने शत्रुओं के साथ क्रूर व्यवहार करते थे। ईसा की इक्कीसवीं शताब्दी की शुरुआत में इससे भी अधिक क्रूर व्यवहार काठमाण्डो के राजघराने में हुआ है। जिस राज-ऐश्वर्य के लिए ये रजवाड़े घोर कुकर्म करते रहे, वह उनसे छूटकर लुप्त होता रहा और ये रजवाड़े सड़कर-जलकर धूल में मिलते रहे। अतएव उक्त क्रूर व्यवहार से दूर रहना चाहिए।

कणिक ने स्वयं अंत में कहा है कि संपत्तिसंपन्न राजा यह पापपूर्ण काम न करे। जब उसके ऊपर कोई ऐसा करे, तो वह क्यों न करे? आज सर्वत्र प्रायः जनतंत्र है जिसमें कणिक की क्रूर नीति की आवश्यकता ही नहीं है। वैसे राजनीति और वेश्या से शांति-इच्छुक को दूर रहना चाहिए।

. विश्वामित्र ने भूख से पीड़ित हो कुत्ते की जांघ खायी

युधिष्ठिर ने पूछा—सर्वत्र अव्यवस्था हो जाय, धर्म, कर्म चौपट हो जाय और ब्राह्मण भूख से पीड़ित हो और उसे कुछ खाने को न मिले तो ऐसे संकटकाल में वह कैसे अपना जीवन बचाये?

भीष्म ने कहा—प्रजा के योग, क्षेम, उत्तम वृष्टि, व्याधि, मृत्यु और भय सबका मूल राजा ही है। सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का मूल राजा ही है। भयानक समय आने पर ब्राह्मण अपने विज्ञान-बल का सहारा लेकर जीवन बचाये। इसके विषय में विश्वामित्र और मेहतर का संवाद रूप इतिहास का लोग उदाहरण दिया करते हैं। एक बार बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। सर्वत्र भुखमरी से त्राहि-त्राहि मच गयी। इसी बीच एक दिन विश्वामित्र घर छोड़कर भूख से पीड़ित हो इधर-उधर भटक रहे थे। वे घर-घर भीख मांगते फिरे, परंतु उन्हें कुछ नहीं मिला। विश्वामित्र चलते-चलते एक मेहतर के घर में पृथ्वी पर गिर

पड़े। इतने में उन्होंने देखा कि उसके घर में तुरंत मारे गये एक कुत्ते की टांग पड़ी है। उन्होंने उसकी चोरी करने की बात सोची। विश्वामित्र वहीं पड़े रहे। जब मेहतर बिस्तर पर लेट गया और कुछ समय बीतने पर जब विश्वामित्र को विश्वास हो गया कि मेहतर सो गया है, तब वे कुत्ते की उस टांग को चुराने के लिए चले। मेहतर जागता था। वह कड़क भाषा में बोल पड़ा–कौन यहां आकर कुत्ते की जांघ लेने की चेष्टा कर रहा है?

विश्वामित्र लज्जित हो गये। उन्होंने अपनी भूख की व्यथा कही और कहा कि भाई! तू मुझे मारेगा नहीं। मेहतर विनम्र हो गया और उसने विश्वामित्र को जानकर कहा–ब्रह्मन! रात में यह आपकी कैसी चेष्टा है, आप क्या करना चाहते हैं? विश्वामित्र ने कहा–बंधु! मैं बहुत भूखा हूं। मैं कुत्ते की इस टांग को खाने के लिए ले जाऊंगा। मैं भूख से शिथिल हो गया हूं, अतएव भक्ष्याभक्ष्य का विचार छोड़कर मैं आज कुत्ते का मांस खाकर जीवन बचाऊंगा। मेहतर ने बहुत समझाया कि यह खाद्य आपके लिए उचित नहीं है। आप कुत्ते का मांस खाकर बहुत लंबी आयु वाले नहीं हो जायंगे। आपको यह अखाद्य नहीं खाना चाहिए; परंतु विश्वामित्र ने कहा–जीवन बच जायगा, तो प्रायश्चित कर लूंगा। अंततः विश्वामित्र कुत्ते की टांग ले ही गये–*विश्वामित्रो जहारैव कृतबुद्धिः श्वजाघनीम्* (,)।

मीमांसा

एक सौ एकतालीस ( )वें अध्याय में यह कथा एक सौ दो ( ) श्लोकों में लिखी गयी है। इसमें यह बताने की चेष्टा की गयी है कि ब्राह्मण को भी प्राण संकटकाल में अपनी जान कुछ भी खाकर बचा लेना चाहिए, फिर पीछे अपना आचार-विचार ठीक कर ले। जब शरीर सुरक्षित रहेगा, तब धर्म भी सधेगा। यदि शरीर ही नहीं रह जायगा तो मनुष्य कल्याण-साधना कैसे करेगा? ध्यान रहे, वेदों के अनुसार विश्वामित्र ब्राह्मण हैं, पुराणों ने उन्हें क्षत्रिय बना दिया है।

. शास्त्र और बुद्धि दोनों का प्रयोग कर राजा शासन करे

युधिष्ठिर ने कहा–पितामह! जब महापुरुषों के लिए कुत्ते का मांस खाने जैसा भयंकर कर्म कर्तव्य रूप में दिया गया है, तब लुटेरे और डाकुओं के लिए क्या विधान किया जायगा? मैं तो यह बात सुनकर भ्रम में पड़ गया हूं और धर्म के लिए शिथिल हो गया हूं।

भीष्म ने कहा–केवल शास्त्र-वचनों के पीछे चलने से काम नहीं चलेगा। जैसे मधुमक्खियां नाना वनस्पतियों से रस लेकर मधु बनाती हैं, वैसे विद्वानों ने नाना प्रकार की बुद्धियों का संग्रह किया है। राजा को इधर-उधर से नाना प्रकार की बुद्धियों को सीखना चाहिए। उसे एक ही शाखा के धर्म को लेकर नहीं बैठे रहना चाहिए– *"नैकशाखेन धर्मेण यत्रैषा सम्प्रवर्तते"* (,)। धर्म और सत्पुरुषों का आचार बुद्धि से ही प्रकट होते हैं। राजा को इधर-उधर से बुद्धि लेकर धर्म का आचरण करना चाहिए। एक शाखा वाले धर्म से राजा का धर्म नहीं चल सकता। एक बात कभी धर्म मानी जाती है और कभी अधर्म। बुद्धिमान मनुष्य विचारकर पहले अपने कार्य को गुप्त रूप में करे, पीछे उसे अन्य को बतावे। अन्यथा उसके आचरण को लोग कुछ दूसरे रूप में ही मान लेंगे। कुछ लोग सच्चे ज्ञानी होते हैं, और कुछ लोग मिथ्या ज्ञानी। राजा सच्चे ज्ञानी का आश्रय ले।

धर्मविरोधी लोग शास्त्रों के धर्म पर डाका डालते हैं। वे अर्थज्ञान से शून्य लोग मिथ्या प्रचार करते हैं। जो विद्या को जीविका का साधन बनाते हैं, वे धर्मद्रोही हैं। अपरिपक्व तथा मंदबुद्धि के लोग शास्त्रज्ञान से हीन होकर असंगत प्रचार करते हैं। कितने कटुभाषी दूसरे की विद्या की निंदा करते और अपनी विद्या की प्रशंसा करते हैं। ऐसे लोग विद्या के व्यापारी हैं। उनके चक्कर में न पड़े। "मैंने सुना है कि केवल वचन और बुद्धि द्वारा धर्म का निश्चय नहीं होता, अपितु शास्त्र-वचन तथा तर्क, दोनों से उसका निर्धारण होता है। यही बृहस्पति का मत है जिसे इंद्र ने स्वयं कहा है।" विद्वान पुरुष अनुभव की बात कहते हैं और सामान्य लोग शास्त्र के अनुसार काम करते हैं। कोई-कोई मनीषी पुरुष शिष्ट पुरुषों द्वारा चलाये हुए लोकाचार को धर्म कहते हैं, परंतु विवेकवान को चाहिए कि वह स्वयं विवेक करके धर्म का स्वरूप निर्धारित करे। जो बुद्धिमान होकर शास्त्र-वचन को ठीक से न समझकर बड़े जोश के साथ उस पर प्रवचन करते हैं, उसका प्रभाव अच्छा नहीं होता है। शास्त्र और विवेक से समर्थित बात का मूल्य होता है। केवल बुद्धिविलास नासमझी है। संशयात्मक ज्ञान व्यर्थ है। अतएव निस्संशय ज्ञान प्राप्त करो। युधिष्ठिर! तुम क्षत्रिय हो। उग्र कर्म करने के लिए ही क्षत्रिय पैदा हुआ है। मैंने वही किया, यह मेरे किये हुए को देखकर समझ सकते हो। बकरा, घोड़ा और क्षत्रिय, तीनों को ब्रह्मा ने एक समान बनाया

. **न धर्मवचनं वाचा नैव बुद्धयेति नः श्रुतम्।**
इति बार्हस्पतं ज्ञानं प्रोवाच मघवा स्वयम् ,

है। इन तीनों के द्वारा प्राणियों की किसी–न–किसी प्रकार जीवन–यात्रा सिद्ध होती है। अवध्य मनुष्य को मारना पाप है और जो मारा जाने योग्य है उसको न मारना भी पाप है। अतएव तीक्ष्ण स्वभाव का राजा ही प्रजा में धर्म स्थापित कर सकता है। ऐसा न हो तो प्रजा में एक–दूसरे को भेड़िए की तरह खा लेंगे। जिसके राज्य में चोर, डाकू और अत्याचारी दूसरों के धन का अपहरण करते हैं, क्षत्रिय नाम पर वह राजा कलंक है। सदाचारी तथा विद्वान पुरुष को मंत्री बनाकर प्रजा का ठीक पालन करो। सत्कर्मरहित, न्यायशून्य तथा काम करने के साधन से अनभिज्ञ मंत्री बनाने वाला राजा नपुंसक है।

राजधर्म में न केवल उग्र भाव की प्रशंसा है और न केवल कोमल भाव की। समयानुसार इन दोनों का प्रयोग करना चाहिए। शुक्राचार्य ने कहा है कि राजा आपत्तिकाल में भी दुष्टों का दलन तथा प्रजा का पालन करे (अध्याय)।

. कपोत का त्याग तथा जनमेजय का ब्रह्म–हत्या से उद्धार

एक सौ तैतालीस से एक सौ उन्चास (–) सात अध्यायों में कपोत–कपोती की कथा है जिनमें यह चित्रित किया गया है कि वर्षा–आंधी से व्यथित एक बहेलिये का सत्कार कपोत ने किया। उसने उसकी ठण्डक निवारण के लिए आग तथा ईंधन का प्रबंध किया और अपने शरीर को आग में डालकर उसके भोजन का प्रबंध किया। इससे यह चित्रित किया गया है कि शत्रु भी द्वार पर आ जाय तो उसका भी सत्कार करना चाहिए।

आगे तीन अध्यायों (–) में एक कथा आती है कि राजा जनमेजय को अनजान में ब्रह्महत्या का पाप लग गया था। वे इंद्रोत मुनि की शरण में गये। मुनि ने जनमेजय से अश्वमेध यज्ञ करवाकर उन्हें ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त कराया।

मीमांसा

कथा में कहा गया है कि पूर्व काल में राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय को अनजान में ब्रह्महत्या का पाप लग गया था (–)। कथालेखक को यह भी ख्याल नहीं था कि परीक्षित अर्जुन के पौत्र तथा जनमेजय प्रपौत्र हैं। इस बात को पुराकाल में घटित घटना का इतिहास कहना अज्ञान के सिवा क्या है? अभी

परीक्षित माता के गर्भ में हैं, फिर उनके पुत्र जनमेजय की कहानी लिखने का क्या तुक है? किसी पंडित को अश्वमेध यज्ञ से पाप कटने की महिमा बताना था, तो वह बिना तुक के अपना तीर चला दिया। जब भीष्म कहानी सुना रहे हैं इसके महीनों बाद परीक्षित पैदा होंगे और दशकों बाद परीक्षित से जनमेजय पैदा होंगे। अश्वमेध स्वयं पापपूर्ण तथा अत्याचार का यज्ञ है, जिसमें अनेक राजा सताये जाते थे तथा उनका धन छीना जाता था और यज्ञ में अश्व सहित तीन सौ पशु मारे जाते थे। वस्तुतः यह बलवान राजाओं की क्रूरता तथा कोष-संग्रह और पुरोहितों का मोटी दक्षिणा पाने का साधन था।

. गीध तथा गीदड़ के मुख से विज्ञानवाद का कथन

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! क्या कभी मृत व्यक्ति जी उठा है?

भीष्म ने कहा–एक पुराना इतिहास है। एक ब्राह्मण का कुमार लड़का मर गया। वे लोग उसे श्मशान में ले गये। उसके वियोग में लोग रो रहे थे। इतने में एक गीध-पक्षी आ गया। उसने कहा–तुम लोग इस लड़के के शव को यहीं छोड़कर शीघ्र लौट जाओ। देरी मत करो। यहां हजारों स्त्री-पुरुष मरकर आ चुके हैं और उन्हें उनके स्वजन छोड़कर चले गये हैं। संसार दुख-सुख से पूर्ण है। यहां की रीति यही है कि संयोग के बाद वियोग हो जाता है। मृत को श्मशान में लाने वाले संबंधी एक दिन स्वयं मर जाते हैं। गीधों और गीदड़ों से भरे इस श्मशान में सर्वत्र नर-कंकाल पड़े हैं। यह भयानक स्थान है। यहां तुम मत रुको। रुकने का कोई काम नहीं है। चाहे प्रिय हो या अप्रिय, मरा हुआ व्यक्ति पुनः जीवित नहीं होता। यही सभी प्राणियों की गति है। जन्मे हुए को मरना पक्का है। मरे हुए को कौन जीवित कर सकेगा? सूर्य डूबने की तरफ जा रहा है। लोग अपना काम पूरा करके घर लौट रहे हैं। तुम लोग भी अपने पुत्र का मोह छोड़कर घर लौट जाओ।

गीध की उपर्युक्त बातें सुनकर वे लोग जोर-जोर से रोने लगे और अपने पुत्र का शव वहीं छोड़कर घर लौटने लगे। इतने में एक गीदड़ आ गया और उसने कहा–अरे निर्दय, मूर्खो! अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ है। तुम लोग इसे छोड़कर क्यों जाते हो? पशु भी अपने बच्चों की रक्षा करते हैं। तुम मनुष्य होकर अपने बालक की रक्षा न करके घर लौट रहे हो। इस बच्चे के लिए देर तक रोओ और इसका प्यार करो।

सियार की बातें सुनकर वे मनुष्य रुक गये। तब गीध ने कहा–इस तुच्छ-बुद्धि गीदड़ की बात मानकर तुम लोग रुक क्यों रहे हो? इस बच्चे का शरीर तो

मृत है, सूखे काठ की तरह पड़ा है। एक दिन तुम्हारी भी यही दशा होगी, फिर अपने लिए क्यों नहीं रोते हो? तुम लोग तप करो, अपने पाप का क्षय करो। सब जीव अपने कर्मानुसार सुख-दुख पाते हैं। पिता के कर्म से पुत्र का और पुत्र के कर्म से पिता का कोई संबंध नहीं है। सब जीव अपने-अपने कर्मों में बंधे हुए भटक रहे हैं। तुम धर्म में लगो, अधर्म का पथ छोड़ो। शोक और दीनता छोड़कर पुत्र-मोह से मन हटा लो। इस बालक का शव यहीं छोड़कर शीघ्र घर लौट जाओ। जीव अपने कर्मों के फल भोगते हैं। इसमें भाई-बंधु क्या करेंगे? विद्वान-अविद्वान, धनी-निर्धन सब अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अधीन भटकते हुए काल के गाल में चले जाते हैं। अच्छा, यह बताओ कि तुम लोग शोक करके क्या कर लोगे? क्या इसे जिला लोगे? फिर इस मृत के लिए क्यों शोक करते हो? काल सबका स्वामी और शासक है। वह सब पर समान भाव रखता है। यह विकराल काल बालक, युवा, वृद्ध सबको मारता है। गर्भस्थ शिशु को भी मार देता है। फिर क्या रोना-धोना? इस संसार की यही दशा है।

गीदड़ ने उनसे कहा–क्या इस मूर्ख गीध ने तुम्हारे स्नेह को ठंडा कर दिया है? पुत्र कितना प्यारा होता है! तुम्हारे पुत्र-वियोग से मैं भी दुखी हूं। अपना प्रयत्न करो। प्रारब्ध और पुरुषार्थ काल से ही सम्पन्न होते हैं। तुम इस बालक को छोड़कर अभी मत जाओ। अच्छा, इतना करो, कि जब तक सूर्य अस्त न हो जाय, तब तक यहीं रहो। उसके बाद तुम्हारा विचार जैसा होगा वैसा करना।

गीध ने कहा–मैंने आज तक यह नहीं देखा कि कोई मरा हुआ प्राणी पुनः जी गया हो। गर्भ में, जन्म लेकर, चलते-फिरते, जवान होकर, बूढ़े सभी अवस्था में प्राणी मरते हैं। सभी का सब कुछ अनित्य है। पत्नी और पुत्र के वियोग में शोक की आग में जलते हुए लोग इस श्मशान से लौट जाते हैं। हजारों लोग अपने प्रियजनों की लाश यहां छोड़कर लौट गये हैं। इस मृत बालक का मोह निरर्थक है। तुम लोग मोह छोड़कर घर लौट जाओ। मेरी बातें तुम्हें निष्ठुर लगती होंगी, परंतु ये युक्तियुक्त और मोक्षप्रद है। तुम लोग मोह छोड़कर घर चले जाओ। गीध की उक्त बातें सुनकर लोग घर जाने के लिए उत्सुक हो गये।

गीदड़ ने कहा–ऐ मनुष्यो! तुम इस सोने-जैसे चमकते हुए बालक को छोड़कर जाने के लिए क्यों उत्सुक हो गये?

गीध ने कहा–यह बालक काल के अधीन होकर चिरनिद्रा में लीन है। यहां बड़े-बड़े लोग मृत्यु के ग्रास बनते हैं। संसार तो मरने वालों का नगर है–साधो, ये मुर्दों का गांव–*इदम् प्रेत-पत्तनम्।* यहां तो सभी लोग स्वजनों के वियोग से दुखी रहते हैं। अब इसके जीने का कोई भरोसा नहीं है। तुम लोग घर लौट

जाओ। मरे हुए का जीना असंभव है। सैकड़ों गीदड़ अपना बलिदान करके इस बालक को जिला नहीं सकते। रोने-बिलखने से कोई मरा प्राणी क्या जीता है? असंभव! मैं, यह गीदड़ तथा सब लोग धर्म-अधर्म को लेकर अपनी-अपनी राह पर चल रहे हैं। बुद्धिमान को चाहिए कि वह किसी के लिए अप्रिय व्यवहार न करे, दूसरे के साथ द्रोह न करे, कठोर वचन न बोले, असत्य-भाषण न करे, परायी स्त्री से दूर रहे। तुम लोग धर्म, सत्य, शास्त्रज्ञान, न्याययुक्त बरताव, सब पर दया, सरलता और विनम्रता का बरताव करो। जीवित माता-पिता, बंधु-बांधवों के साथ उत्तम बरताव करो। इस मरे हुए मनुष्य के लिए रोकर क्या पाओगे? गीध की उक्त बातें सुनकर लोग घर जाने लगे।

गीदड़ ने कहा—यह मृत्युलोक दुख से पूर्ण है। यहां सब प्राणी मरते हैं। प्रिय का वियोग होना पक्का है। जीवन क्षणिक है। यह संसार असत्य और सब कुछ अरुचिकर है। यहां कटु बोलने वाले अधिक हैं, किंतु प्रिय बोलने वाले बहुत कम हैं। संसार का भाव दुख-शोक-उत्पादक है। अतएव इस संसार की दुर्दशा देखकर मुझे संसार एक मुहूर्त भी अच्छा नहीं लगता है। तुम गीध की बात सुनकर निष्ठुर हो क्यों घर को लौट रहे हो? सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख आता है। इन दोनों में सदा एक ही नहीं रहता। पुत्रशोक में तुम लोग मृततुल्य हो गये हो। तुम लोग जाओ मत, अभी यहीं ठहरो।

गीध ने कहा—यह श्मशान वन प्रदेश है। यहां दुष्ट प्राणी रहते हैं। रात में उल्लू हू-हू करते हैं। अतएव यह स्थान भयंकर है। चिता के काले धुएं से यहां पेड़ के पत्ते भी काले हो गये हैं। यहां भूखे प्राणी गरजते हैं। यहां मांसाहारी प्राणी रहते हैं। रात में वे तुम्हें नोच खायेंगे। तुम लोग गीदड़ की बातों में मत पड़ो, घर लौट जाओ।

गीदड़ ने कहा—जब तक सूर्य न डूब जाय तब तक यहां ठहरो।

वस्तुतः गीध और गीदड़ अपने-अपने भोजन-स्वार्थ में थे। गीध दिन में मृत-शरीर के मांस को खाता है और गीदड़ प्रायः रात में। इसलिए गीध लोगों को शीघ्र चले जाने की बात करता था और गीदड़ उन्हें सूरज डूबने की बात करता था ताकि शाम होने तक इन मनुष्यों की सुरक्षा में लाश बनी रहे। गीध कहता था कि सूरज डूब गया और गीदड़ कहता था कि सूरज अभी नहीं डूबा है। दोनों भूखे थे, उस लाश को खाना चाहते थे और शास्त्रीय भाषा में ज्ञान झाड़ रहे थे। गीध और गीदड़ ने अपनी चालाकी से उन्हें चक्कर में डाल रखा था। वे दोनों विज्ञान-विदुष थे। इतने में शिवजी ने आकर मृत बालक को जिला दिया (अध्याय)।

मीमांसा

मृत को न कोई जिला सकता है और न गीध तथा गीदड़ ज्ञानवान हो सकते हैं और न वे मानवीय भाषा बोल सकते हैं। वस्तुतः यहां गीध और गीदड़ के मुख से बौद्धों के विज्ञानवाद का गायन करवाया गया है– *तयोर्विज्ञानविदुषोर्द्वयोः* ( )–वे दोनों विज्ञानवाद के ज्ञाता थे। बौद्धों का 'शृगालोवाद सुत्तन्त' यहां से मिलाने योग्य है। लेखक ने गीध और गीदड़ के मुख से शरीर–संसार की नश्वरता, दुखरूपता और क्षणभंगुरता का चित्रण किया है और पवित्र आचरण से रहने का संकेत किया है।

. नारद की चुगुली, वायु–सेमल का संघर्ष

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! बलवान शत्रु के आक्रमण से अपने आप की सुरक्षा कैसे करें?

भीष्म ने कहा–पुराना इतिहास है। हिमालय पर्वत पर एक बहुत बड़ा सेमल का पेड़ था। उसकी शाखाएं तथा पत्ते सघन थे। नारद ने उससे पूछा–वायु बड़े–बड़े वृक्षों को उखाड़ फेंकता है, वह तुम्हें कैसे सुरक्षित खड़ा रहने देता है? क्या वायुदेव तुमसे मित्रता करते हैं, या तो तुम उनसे विनम्रभाव से रहकर उनके शरणागत हो, तभी वे तुम्हें नहीं उखाड़ते?

सेमल ने कहा–महर्षे! वायुदेव न मेरे मित्र हैं और न मैं उनसे डरता हूं। वे कोई ब्रह्मा नहीं हैं कि वे मेरी रक्षा करेंगे। वस्तुतः मैं स्वयं बलवान हूं। वायु मेरा क्या करेगा?

नारद ने जाकर वायुदेव से चुगुली कर दी कि आपको सेमल ने बहुत भला–बुरा कहा है। वायुदेव तमककर झट सेमल–पेड़ के पास आ गये और उससे कहा कि तुमने नारदजी के सामने मेरी निंदा की है? मैं तुम्हें जानता हूं और तुम्हें देख लूंगा। सेमल के पेड़ ने वायु देवता से कहा–तुम बड़े बली होकर क्या करोगे? मैं बुद्धि में बलवान हूं। शरीर–बल से बुद्धि–बल श्रेष्ठ है। मेरे में बुद्धि–बल है।

वायुदेव अगले दिन सेमल से लड़ने के लिए वचन देकर चले गये। सेमल सावधान हो गया। वह अगले दिन अपनी शाखाओं, टहनियों तथा पत्तों को नीचे गिरा दिया और वायु देवता के आने की प्रतीक्षा करने लगा। वायुदेव आये, तो वे सेमल का कुछ न कर सके।

पहली बात है कि बलवान से वैर न करे। दूसरी बात है कि शरीर-बल से अधिक बुद्धि-बल है। सेमल वायु के सामने अत्यंत दुर्बल होकर बुद्धि-बल से अपने को गिरने से बचा लिया। बालक, जड़, अंध, बधिर तथा बलवान के द्वारा किये गये अपराध को क्षमा कर देना चाहिए। क्षमाशील शांति पाता है।

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! बलवान शत्रु के सामने नम्र होकर संधि कर ले। दूसरी बात है कि बुद्धि-बल से मनुष्य बड़े-बड़े संकटों से बच सकता है (अध्याय -)।

. लोभ सभी विकारों की जड़, इससे परे शुद्ध अध्यात्म

युधिष्ठिर ने पूछा– *"पापस्य यदधिष्ठानं यतः पापं प्रवर्तते।"* अर्थात पाप का अधिष्ठान क्या है जिससे उसकी प्रवृत्ति होती है।

भीष्म ने कहा–केवल लोभ पाप का अधिष्ठान है। मनुष्य को निगल जाने वाला लोभ ही ग्राह है। लोभ से ही पाप की प्रवृत्ति होती है। लोभ ही से पाप, अधर्म तथा दुख पैदा होते हैं। लोभ ही से शठता, छल तथा कपट उत्पन्न होते हैं। लोभ ही से काम, क्रोध, माया-मोह, अभिमान, उद्दण्डता तथा पराधीनता आदि प्रकट होते हैं। लोभ से ही असहनशीलता, निर्लज्जता, संपत्तिनाश, धर्मक्षय, चिंता तथा अपयश उत्पन्न होते हैं। लोभ से ही कृपणता, तृष्णा, दुराचार, कुल तथा विद्या का अभिमान, रूप-ऐश्वर्य का मद, प्राणि-द्रोह, सबका तिरस्कार, सबके प्रति अविश्वास तथा कुटिलतापूर्ण व्यवहार होते हैं।

परधन-अपहरण, परस्त्री-रति, वाणी-वेग, मन का वेग, निंदा करने की प्रवृत्ति, जननेंद्रिय का वेग, उदर-वेग, आत्महत्या, ईर्ष्या का वेग, मिथ्या-वेग, प्रबल रसनेंद्रिय-वेग, श्रोत्रेन्द्रिय-वेग, घृणा, आत्म-प्रशंसा-वेग, मत्सरता, दुष्प्रवृत्ति, न करने योग्य काम करने का वेग, इन सबका कारण लोभ है। मनुष्य जन्म से बुढ़ापा तक जिस कारण बुरे कर्म त्याग नहीं पाता है वह लोभ ही है। जैसे समस्त नदियों के जल से समुद्र का पेट नहीं भरता, वैसे संसार का समस्त ऐश्वर्य पाकर लोभ का पेट नहीं भरता। लोभी मनुष्य बहुत लाभ पाकर भी संतुष्ट नहीं होता और न भोगों से तृप्त होता है। देवों, गंधर्वों, असुरों, नागों तथा संपूर्ण प्राणियों ने लोभ की थाह नहीं पायी है। दंभ, द्रोह, निंदा,

चुगुली, मत्सरता लोभी में भरे होते हैं। विवेकवान लोभ को जीतने की साधना करे।

बहुश्रुत विद्वान बड़े-बड़े शास्त्रों को कंठस्थ कर लेते हैं, अन्य के संशयों का निवारण कर देते हैं, परंतु लोभ में उनकी बुद्धि मारी जाती है और निरंतर क्लेश उठाते हैं। वे द्वेष और क्रोध में फंसकर शिष्टाचार, सदाचार को छोड़ देते हैं। वे बाहर से मीठे दिखते हुए भीतर कठोर होते हैं। वे घास–फूस से ढके हुए कुएं के समान होते हैं। वे धर्म के नाम पर लोगों को धोखा देने वाले तथा धर्म का ढोंग फैलाकर जगत को लूटने वाले होते हैं। वे युक्तिबल से असत–मार्ग खड़े करते हैं। वे सन्मार्ग का नाश करने वाले होते हैं। जिनकी बुद्धि लोभ में फंसी हुई है, उनमें दर्प, क्रोध, मद, दुःस्वप्न, हर्ष, शोक तथा अत्यंत अभिमान होते हैं। लोभी अशिष्ट होता है।

लोभ से परे पहुंचे हुए शिष्ट पुरुष इस प्रकार होते हैं–उन्हें पुनः जन्म लेने का भय नहीं होता, परलोक का भय नहीं होता। वे भोगों से अनासक्त होते हैं। वे प्रिय–अप्रिय के राग–द्वेष से रहित होते हैं। वे इंद्रिय–संयमी, दुख–सुख में समान रहने वाले और सत्यपरायण होते हैं। वे देते हैं, याचना नहीं करते। वे दयालु होते हैं तथा पर–सेवा में रत होते हैं। वे परोपकारी, प्राणियों के रक्षक तथा धर्म–परायण होते हैं। वे अपने सत्कर्म से विचलित नहीं होते। उनका स्वभाव कोमल होता है। वे किसी को भय नहीं देते। वे सदा सन्मार्गरत होते हैं। उनमें सदैव अहिंसा की प्रतिष्ठा रहती है। वे काम, क्रोध, ममता तथा अहंकार से शून्य होते हैं। उनका धर्म–पालन धन और यश बटोरने के लिए नहीं होता। वे धर्म तथा शारीरिक क्रियाओं को आवश्यक समझकर करते हैं। उनमें भय, क्रोध, चपलता तथा शोक नहीं होते। वे पाखंडी नहीं होते हैं। उनमें लोभ–मोह का अभाव रहता है। वे सत्य और सरलता में स्थित रहते हैं। वे लाभ के हर्ष में नहीं फूलते, हानि में पीड़ित नहीं होते तथा ममता और अहंकार से शून्य रहते हैं। वे सदैव सद्गुणों में स्थित रहते हैं। वे समदर्शी होते हैं। उनकी दृष्टि में लाभ–हानि, सुख–दुख, प्रिय–अप्रिय तथा जीवन–मरण समान होते हैं। वे सुदृढ़, पराक्रमी, आध्यात्मिक उन्नति के इच्छुक और सत्यमार्ग पर दृढ़ स्थित होते हैं। युधिष्ठिर! तुम ऐसे ही महापुरुषों की संगत और सेवा करो। ऐसे महापुरुष की वाणी सत्य–असत्य तथा शुभ–अशुभ के विषय में निर्णयवती होती है। अन्य ज्ञानी कहलाने वाले केवल बातें बनाने वाले होते हैं। आगे एक सौ उनसठ ( )वें अध्याय में अज्ञान और लोभ को एक दूसरे का कारण बताकर इन दोनों की पूर्ण निवृत्ति पर जोर दिया गया है। यह अध्याय कुल तेरह श्लोकों का है (अध्याय –)।

मीमांसा

उक्त कथन प्रज्ञादर्शन के अनुयायियों का है जो सर्वग्राह्य और सार्वभौमिक है। यह मतवाद से परे शुद्ध मानवता एवं शुद्ध अध्यात्म का सार है।

. दम की महिमा, मोक्ष-रहनी और तप का महत्त्व

युधिष्ठिर ने पूछा- *"बहुधा दर्शने लोके श्रेयो यदिह मन्यसे। अस्मिंल्लोके परे चैव तन्मे ब्रूहि पितामह।"* हे पितामह! इस संसार में श्रेय प्राप्ति के साधन में बहुत दर्शन हैं, परंतु जो लोक-परलोक में कल्याणकारी हो, उसे मुझे बताइये।

भीष्म ने कहा-महर्षियों ने अपने-अपने विचार से कल्याण के लिए धर्म की अनेक शाखाएं बतायी हैं, परंतु उन सबका आधार 'दम' है, जिसका अर्थ है मन और इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण। विवेकवान दम को ही मोक्ष का मुख्य साधन बताते हैं। दम से पापरहित होकर जीव परम पद में स्थित हो जाता है। दम के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। संसार में धर्म की सभी शाखाओं में दम सर्वसम्मत कल्याण-साधन है।

"जिसने अपने मन-इंद्रियों को पूर्ण स्ववश कर लिया है, वह सुख से सोता है, सुख से जागता है और सुखपूर्वक संसार में विचरता है। उसका मन सदैव प्रसन्न रहता है।" इंद्रियों का गुलाम बना मन हर क्षण क्लेश भोगता है। वह अपने दोषों से अनेक अनर्थ पैदा करता है। जिस व्यक्ति में दम का पूर्ण उदय हो गया है, जो इंद्रिय-मन पर पूर्ण संयमी है, उसमें ये सद्‌गुण विराजते हैं, जैसे क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्यवादिता, सरलता, इंद्रियविजय, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोधहीनता, संतोष, प्रियवचन, किसी को दुख न देना, दूसरों में दोष न देखना, गुरुजनों का आदर, सब प्राणियों पर दया, चुगुली न करना आदि।

वह जन-अपवाद, असत्यभाषण, निंदा-स्तुति की प्रवृत्ति, काम-क्रोध, लोभ-दर्प, जड़ता, डींग हांकना, रोष, ईर्ष्या, पर-अपमान आदि से दूर रहता है।

दमनशील व्यक्ति निष्काम रहता है। वह किसी से कोई याचना नहीं करता, दूसरों के दोष नहीं देखता। वह समुद्र के समान अगाध गंभीर होता है। वह यह

. **सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते।**
सुखं पर्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति
(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक)

नहीं मानता कि कोई मेरा है और मैं किसी का हूं। वह सबसे निर्मोह रहता है। वह ग्रामीणों तथा वनवासियों की प्रवृत्तियों से रहित रहता है और किसी की निंदा नहीं करता और प्रशंसा से भी दूर रहता है। वह सदैव जगत–वासना से मुक्त रहता है। वह सबके प्रति मित्रभाव रखता है, सुशील होता है, सब समय प्रसन्न, सभी आसक्तियों से रहित तथा आत्माराम होता है।

स्वरूपज्ञानसंपन्न जितेंद्रिय मनुष्य घर को छोड़कर वन में विचरता हुआ तथा मृत्युकाल की प्रतीक्षा करता हुआ द्वंद्वातीत हो कालक्षेप करता है। इस प्रकार वह ब्रह्मभाव में स्थित हो जाता है। जो किसी से भय नहीं करता तथा जिससे दूसरों को भय नहीं मिलता, वह सर्वत्र निर्भय रहता है। वह अनासक्त होकर जीवनयात्रा पूर्ण करते हुए प्रारब्ध कर्मों को क्षीण करता है, और सर्वत्र अनासक्त होने से उससे नये कर्म नहीं बनते। वह सबमें मित्र भाव रखकर समता–निर्भयता से जीवन–यात्रा पूर्ण करता है।

"जैसे आकाश में पक्षियों के और जल में जलचर जंतुओं के पदचिह्न नहीं दिखायी देते, वैसे ज्ञानी की गति नहीं दिखायी देती, इसमें संशय नहीं है।" जो घर–बार छोड़कर वैराग्यपूर्वक मोक्षपथ पर चलता है, वह अनंत काल के लिए शांति पाता है। जिसका आचार–विचार पवित्र है, अंतःकरण निर्मल है, जो भोगों का त्यागी है, जिसकी सभी कामनाएं निवृत्त हो गयी हैं, वह समस्त कर्मों तथा विद्याओं से संन्यास लेकर अक्षय पद में स्थित हो जाता है। ब्रह्मधाम अपना हृदय है, क्योंकि आत्मा ब्रह्म है। दम से ही उसमें स्थिति होती है।

"ज्ञानस्वरूप आत्मा में निरंतर रमण करने वाले ज्ञानी, जिनका किसी प्राणी से विरोध नहीं है, उनको पुनः इस संसार में जन्म लेने का भय नहीं रहता, फिर पर–लोक का भय होने की बात ही कहां है?"

संयम में केवल एक दोष है, दूसरा नहीं। उसे लोग क्षमाशील होने के कारण असमर्थ समझने लगते हैं। परंतु उसका यह दोष महान सद्‌गुण है। क्षमाशील सहनशील होता है, इसलिए वह आत्मविजयी होता है जो विश्वविजय है। संयमी मनुष्य को वन में जाने की क्या आवश्यकता और असंयमी को वन में क्या लाभ होगा? संयमी मनुष्य जहां रहे वहां वन है और आश्रम है।

. **शकुनानामिवाकाशे जले वारिचरस्य च।**
यथा गतिर्न दृश्येत तथा तस्य न संशयः अध्याय , श्लोक

. **ज्ञानारामस्य बुद्धस्य सर्वभूताविरोधिनः।**
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ,

आगे एक सौ एकसठ ( )वें अध्याय में तप का महत्त्व बताया गया है। संयम की साधना में आये हुए कष्ट को निर्विकार भाव से सह लेना ही तप है। वस्तुतः किसी प्रकार की उन्नति के काम में जो कष्ट मिले उसे सहना ही तप है। आध्यात्मिक दृष्टि से अपने आप का पूर्ण संयम ही तप है (अध्याय -)।

. सत्य तथा उसकी रहनी

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! सत्य क्या है, उसका लक्षण क्या है, उसका आचरण कैसे होता है? भीष्म ने कहा–सत्पुरुषों ने सत्य का ही पालन किया है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा सिर झुकाना चाहिए। सत्य ही जीव का प्राप्तव्य है। सत्य ही तप, धर्म और योग है। सत्य ही ब्रह्म है।

सत्य के तेरह भेद हैं–सत्य, समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, त्याग, ध्यान, आर्यता, स्थिर धृति तथा अहिंसा। उपर्युक्त तेरह सत्य के स्वरूप हैं।

. **सत्य**–जो नित्य, एकरस, अविकारी और अविनाशी है, वह आत्मा ही सत्य है। इसमें स्थिति तब होती है जब सर्वधर्म-अविरुद्ध (सांप्रदायिकता-विहीन) योगाभ्यास किया जाय।

. **समता**–प्रिय-अप्रिय में समान भाव रखना समता है। इच्छा, द्वेष, काम और क्रोध मिटा देने से 'समता' की प्राप्ति होती है।

. **दम**–दूसरे की वस्तु लेने की इच्छा न करना, सदैव गंभीरता और धीरता रखना, भय को त्याग देना और मन के रोगों–मानसिक विकारों को त्याग देना 'दम' है। ज्ञान से इसकी प्राप्ति होती है।

. **अमात्सर्य**–दान-धर्म का कार्य करते समय मन पर संयम रखना, दूसरे की ईर्ष्या न करना मत्सरता का अभाव है। सत्य-पालन से यह दशा आती है।

. **क्षमा**–दूसरे के कटु-मीठे व्यवहार तथा प्रिय-अप्रिय वचन निर्विकार भाव से सह लेना 'क्षमा' है। सत्य-पालन से ही क्षमा आती है।

. **लज्जा**–परहित-रत रहना, मन में दुख न मानना तथा मन-वाणी का सदा शांत रहना, 'लज्जा' सद्‌गुण है। धर्माचरण से यह गुण आता है।

. **तितिक्षा**–धर्म और अर्थ के मार्ग में आयी हुई कठिनाइयों को निर्विकार भाव से सह लेना 'तितिक्षा' है। धैर्य से तितिक्षा आती है।

. **अनसूया**–दूसरे में दोष न देखना ही 'अनसूया' है।

. **त्याग**–विषयों का त्याग ही सच्चा 'त्याग' है। राग–द्वेष से रहित होने से ही त्याग दृढ़ होता है।

. **ध्यान**–कुछ न सोचना ही 'ध्यान' है। निर्विकल्प समाधि, निर्विषय मन, चित्तनिरोध आदि एक ही बात है। यही ध्यान है।

. **आर्यता**–अपने को प्रदर्शित किये बिना दूसरों की सेवा करना 'आर्यता' है। अनासक्ति से यह गुण आता है।

. **धृति**–सुख–दुख तथा अनुकूल–प्रतिकूल सभी स्थितियों में मन का निर्विकार रहना 'धृति' एवं धैर्य है। अपनी उन्नति चाहने वाले को सदैव धृति का सेवन करना चाहिए। क्षमा सेवन, सत्य में तत्परता, हर्ष, भय तथा क्रोध का त्याग करने से धैर्य आता है।

. **अहिंसा**–मन, वाणी तथा कर्म द्वारा सभी प्राणियों के प्रति द्रोह का त्याग देना 'अहिंसा' है। साथ–साथ सदा दया और दान करते रहना उसका सहायक है।

उपर्युक्त सारे कल्याणकारी सद्‌गुण सत्य के आधार से दृढ़ होते हैं। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्य ही धर्म की आधारशिला है। अतएव सत्य का त्याग न करे (अध्याय)।

. तेरह दोष, उनकी उत्पत्ति तथा उनके नाश के साधन और नीच मनुष्य के लक्षण

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! काम, क्रोध, शोक, मोह, विधित्सा (शास्त्र–विरुद्ध काम करने की इच्छा), परासुता (दूसरों को मारने की इच्छा), मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निंदा, दोषदृष्टि और कंजूसी, ये दोष किससे उत्पन्न होते हैं?

भीष्म ने कहा–तुम्हारे कहे हुए उपर्युक्त तेरह दोष मनुष्य के भयंकर शत्रु हैं। ये उन्हें घेरे रहते हैं। ये मानो निरंतर सावधान होकर भेड़िये की तरह मनुष्यों पर टूट पड़ते हैं और उनसे सारे पाप करवाते हैं। कल्याणार्थी को इनसे सदैव सावधान रहना चाहिए। ये दोष कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे बने रहते हैं तथा कैसे नष्ट होते हैं, इसका ज्ञान रखना आवश्यक है।

. **क्रोध**–क्रोध लोभ से उत्पन्न होता है। दूसरों में दोष देखने से बढ़ता है, क्षमा करने से शांत होता है और क्षमा से ही नष्ट हो जाता है।

. **काम**–काम संकल्प से उत्पन्न होता है, भोग-सेवन से बढ़ता है, वैराग्य से नष्ट हो जाता है।

. **परासुता**–क्रोध, लोभ की पुनरावृत्ति से परासुता (दूसरे को मारने की इच्छा) प्रकट होती है। परदोष-दर्शन से यह उत्पन्न होती है। विवेकवानों की संगत, तत्त्वज्ञान, प्राणियों पर दया तथा वैराग्य से यह नष्ट हो जाती है।

. **मोह**–मोह अज्ञान से उत्पन्न होता है। पाप-कर्म दोहराने से यह बढ़ता है। विवेकवानों एवं संतों के प्रति श्रद्धा तथा उनके सत्संग से यह मिटता है।

. **विधित्सा**–धर्म-अध्यात्म की विरोधी पुस्तकों को पढ़ने से विधित्सा (गलत काम करने की इच्छा) उत्पन्न होती है। यथार्थ ज्ञान से यह निवृत्त हो जाती है।

. **शोक**–जिस मनुष्य के प्रति मोह होता है, उसके वियोग से शोक उत्पन्न होता है। जब मनुष्य समझ लेता है कि शोक करने से बिछुड़ा मनुष्य लौट नहीं सकता, अतएव शोक निरर्थक है, तब शोक नष्ट हो जाता है।

. **मात्सर्य**–सत्य का त्याग और कुसंगति करने से मात्सर्य एवं ईर्ष्या उत्पन्न होती है। पवित्रात्माओं की सेवा और संगत करने से मत्सरता नष्ट हो जाती है।

. **मद**–उत्तम कुल, ऊंचा ज्ञान तथा ऐश्वर्य का अभिमान होने से देहाभिमानी मनुष्य पर मद सवार हो जाता है। जब उपर्युक्त बातों की सच्चाई का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है कि सभी माया अनात्म, अनित्य तथा दुखपूर्ण है, तब मद नष्ट हो जाता है।

. **लोभ**–लोभ अज्ञान से उत्पन्न होता है। भोगों की क्षणभंगुरता का सदैव ध्यान रखने से लोभ नष्ट हो जाता है।

. **ईर्ष्या**–कामनाबद्ध मनुष्य को दूसरे की उन्नति देखकर ईर्ष्या उत्पन्न होती है। विवेक-बुद्धि द्वारा उसका नाश होता है।

. **निंदा**–समाज से बहिष्कृत भ्रष्ट मनुष्यों के द्वेषपूर्ण तथा अप्रामाणिक वचनों को सुनकर भ्रमवश निंदा करने की आदत हो जाती है। पवित्र-आत्माओं की संगत से निंदा करने की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

. **दोषदर्शन**–बलवान-विरोधी से बदला लेने का बल नहीं रहता, अतएव उसके प्रति दोष देखने की प्रवृत्ति हो जाती है। दयाभाव उत्पन्न होने पर यह दोष मिट जाता है।

. **कंजूसी**–कृपण मनुष्यों के प्रभाव से कंजूसी आती है। धर्मनिष्ठ उदार

पुरुषों की संगत करने से कंजूसी मिट सकती है (अध्याय)।

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! नृशंस अर्थात नीच मनुष्य के लक्षण क्या हैं? जैसे पथिक कांटों, गड्ढों, आग आदि को बचाकर चलता है, वैसे समझदार क्रूर कर्म करने वाले मनुष्यों को दूर से त्याग देते हैं। नीच मनुष्य सदैव मानसिक क्लेश में जलते रहते हैं। उनके लक्षण बताने की कृपा करें।

भीष्म ने कहा–घृणित इच्छाएं, हिंसाकर्म, निंदा करना, निराशाग्रस्तता, पापप्रवृत्ति, देकर उसका प्रदर्शन करना, विषमतापूर्ण मन, हिंसा तथा व्यभिचार कर्म, पर–जीविका नष्ट करना, लोलुपता, अभिमान, विषयासक्ति, डींग हांकना, सबके प्रति शंका, कौआ के समान संशयवृत्ति, कृपणता, वर्णाभिमान, अच्छे लोगों से द्वेष, दूसरे के सद्‌गुणों में दुर्गुण खोजना, असत्यभाषण, कंजूसी, लोभ इत्यादि दोषों में लिप्त व्यक्ति नृशंस एवं नीच मनुष्य है।

जो पवित्राचारी तथा सद्‌गुणसंपन्न को पापी मानता है, अपने स्वभाव को ऊंचा मानता है, किसी पर विश्वास नहीं करता है, दूसरों के गुप्त दोषों को प्रकट करता है, अपने ऊपर उपकार करने वाले को अपने जाल में फंसा हुआ बेवकूफ मानता है, अपने उपकारी को भी कुछ देकर बहुत काल तक पश्चाताप करता है, साथियों को न खिलाकर अपनी ही पेट–पूजा करता है, वह नृशंस एवं नीच कहा जाता है (अध्याय)।

इसके बाद एक सौ पैंसठ ( )वें अध्याय के अठहत्तर ( ) श्लोकों में पापों तथा उनके प्रायश्चितों का वर्णन है जिसमें पूर्वकाल की धारणाएं प्रतिबिम्बित होती हैं।

. खड्‌ग की उत्पत्ति तथा उसकी यात्रा

इसके बाद एक सौ छाछठ ( )वें अध्याय में खड्‌ग (तलवार) की उत्पत्ति बतायी गयी है जो घोर काल्पनिक है। देवता–दैत्य भाई–बिरादर थे। दैत्य बलवान और देव निर्बल थे। दैत्य से देव सदैव सब समय पिटते थे। ब्रह्मा ने यज्ञ किया। यज्ञकुंड से एक भूत पैदा हुआ, जिसके आन्दोलन से धरती डोलने लगी और पूरी आफत आ गयी। ब्रह्मा ने कहा, मैंने ही इसे देवद्रोहियों के संहार के लिए पैदा किया है। वही भूत खड्‌ग हो गया। इस प्रकार ब्रह्माजी ने तीस अंगुल से कुछ बड़ी तलवार पैदा की और उसे रुद्र को दे दिया। इसके बाद रुद्र

ने उस तलवार को विष्णु को दिया। फिर विष्णु ने मरीचि को, मरीचि ने महर्षियों को, महर्षियों ने इंद्र को, इंद्र ने लोकपालों को, लोकपालों ने मनु को दिया। इसके बाद वह तलवार राजाओं के हाथों में फिरती हुई सूर्यवंश, चंद्रवंश, पुरुवंश, यदुवंश में होते हुए भरद्वाज, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि के हाथों में पहुंची, फिर युधिष्ठिर के हाथों में आ गयी।

खड्ग आयुधों में सर्वोच्च है। उस असि का नक्षत्र कृत्तिका, देवता अग्नि, गोत्र रोहिणी तथा गुरु रुद्र हैं। असि के आठ नाम हैं–असि, खड्ग, विशसन, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल।

अंत में लिखा है कि इस खड्ग का उत्तम प्रसंग सुनने वाला संसार में कीर्ति पाता है और मरने पर अक्षय सुख पाता है (अध्याय)।

मीमांसा

उपर्युक्त अध्याय नवासी ( ) श्लोकों का है जो भावुकता तथा घोर कल्पनाओं से भरा है। तलवार पूरी दुनिया में बनी है, किंतु आज तलवार का कोई मूल्य नहीं रह गया है। आज तो पिस्तौल, बंदूक तथा बम की बड़ाई है।

. धर्म, अर्थ और काम का मूल्यांकन

भीष्म तलवार की कथा कहकर चुप हो गये।

युधिष्ठिर अपने घर चले गये। घर पर उन्होंने विदुर तथा अपने भाइयों से पूछा कि धर्म, अर्थ और काम में कौन श्रेष्ठ है? इस पर आप लोग प्रसन्न होकर उत्तर दें और वही कहें जिस पर आपकी स्वयं निष्ठा हो।

विदुर जी ने कहा–शास्त्रों का अध्ययन, तपस्या, त्याग, श्रद्धा, यज्ञकर्म, क्षमा, भावशुद्धि, दया और संयम आत्मा की संपत्ति है। यही धर्म और अर्थ की जड़ है। इसी से परम पद मिलता है। धर्म से ही ऋषि संसार-सागर से पार गये हैं। धर्म पर ही सारा संसार टिका है। धर्म से ही सबकी उन्नति होती है और धर्म से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। धर्म श्रेष्ठ है, अर्थ मध्यम है और काम अधम है। अतएव मनुष्य को धर्मपरायण होना चाहिए। सभी प्राणियों से वैसा ही बरताव करना चाहिए, जैसा हम अपने लिए चाहते हैं– *"तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि* (,)।"

अर्जुन ने कहा–राजन! यह कर्मभूमि है। यहां जीविका के साधनभूत कर्मों की प्रशंसा है। खेती, व्यापार, गोपालन और नाना प्रकार के शिल्प

(कारीगरी) अर्थ–प्राप्ति के साधन हैं। अर्थ ही सभी कर्मों का सहायक है। अर्थ के बिना न धर्म सिद्ध होगा और न काम। धन से धर्म होता है और धर्म से हीन लंपट मनुष्य काम में लिप्त होता है। धर्म और काम अर्थ के दो अंग हैं। जब अर्थ की सिद्धि होती है, तब इन दोनों की सिद्धि होती है। तपस्वी को भी अर्थ की आवश्यकता है ही। संग्रह–रहित, संकोची, शांत, गेरुआ वस्त्रधारी, दाढ़ी बढ़ाये विद्वान संन्यासी भी धन की अभिलाषा करते हुए देखे जाते हैं। कुल परंपरागत नियमों का पालन करने वाले वर्णाश्रमी लोग भी धन की इच्छा रखते हैं। दूसरे आस्तिक–नास्तिक, संयम–नियम परायण लोग भी धन पाना चाहते ही हैं। अर्थ की प्रधानता न समझना घोर अज्ञान है। अर्थ की प्रधानता का ज्ञान प्रकाशमय है। धनवान वही है जो अपने भृत्यों को भोग–पदार्थ दे और दुष्टों को दण्ड दे। मुझे यही जंचता है। अब आप नकुल–सहदेव की बातें सुनें। इनकी बातें इनके गले तक आ गयी हैं। ये बोलने के लिए उतावले हो गये हैं।

नकुल–सहदेव ने कहा–महाराज! मनुष्य को खड़े, बैठे, सोये तथा चलते–फिरते हर समय धन–संग्रह को मजबूत बनाना चाहिए। धन अत्यंत प्रिय और दुर्लभ वस्तु है। इसी से मनुष्य की सारी कामनाएं पूरी होती हैं। यह सार्वजनिक अनुभव है। हम दोनों का मत है कि धन धर्म से युक्त हो और धर्म धन से युक्त हो। निर्धन की इच्छाएं पूरी नहीं होतीं। धर्महीन को धन भी नहीं मिलता। धर्मयुक्त अर्थ चाहिए। अतएव धर्म में स्थिर रहकर धन कमाना चाहिए, फिर सब काम सरल हो जायगा। अतएव पहले धर्म का आचरण करे, फिर धन का उपार्जन एवं संचय। इसके बाद काम का सेवन करे। इस प्रकार त्रिवर्ग का संग्रह करने वाला सफल मनोरथ होता है।

भीम ने कहा–कामना के बिना न धन कमाया जा सकता है और न धर्म। कामना–हीन मनुष्य तो काम अर्थात भोग भी नहीं चाहता है। अतएव धर्म और अर्थ से बड़ा काम है। कामना से ही ऋषिजन तपस्या करते हैं। फल, मूल तथा पत्ते खाकर रहते हैं। कामना से ही मन–इंद्रियों का संयम किया जाता है। कामना ही करके वेद–उपनिषदों का स्वाध्याय कर उनमें पारगत हुआ जाता है। कामना ही से श्राद्ध, यज्ञ आदि किये जाते हैं। कामना से ही व्यापार, कृषि, शिल्प, गोपालन आदि होते हैं। कामना करके ही मनुष्य समुद्र में घुसकर रत्न खोजते हैं। कामना के अनेक रूप हैं। सभी प्राणी कामना रखते हैं। कामना–रहित प्राणी न कहीं हैं, न कभी थे और न आगे होंगे। अतएव काम ही धर्म तथा अर्थ का मूल है। जैसे दही का सार माखन, जैसे खली से श्रेष्ठ तेल तथा जैसे फूल का

सार उसका रस है, वैसे धर्म और अर्थ का सार काम है; काम धर्म और अर्थ से श्रेष्ठ है।

युधिष्ठिर ने कहा–मैं आप लोगों से धर्म, अर्थ और काम के विषय में मत जानना चाहा था। आप लोगों ने जो कहा मैंने उसको ध्यान से सुना। अब आप लोग मेरी बातों पर ध्यान दें। "जो मनुष्य न पाप में लगा हो, न पुण्य में, न अर्थ में, न धर्म में और न काम में; वह दोषों से पार पहुंचा हुआ दुख और सुख देने वाली सिद्धियों (कर्मों) से सदा के लिए छूट जाता है। उसके लिए मिट्टी का ढेला और सोना समान हो जाते हैं।"

मुमुक्षु इस दुखमय संसार से मुक्ति चाहते हैं। हम लोग उसको समझते ही नहीं हैं। ब्रह्मा जी का कथन है कि जिसके मन में विषयों की आसक्ति है उसकी कभी मुक्ति नहीं होगी। आसक्ति-शून्य आत्मज्ञानी ही मोक्ष का अधिकारी है। मुमुक्षु को चाहिए कि वह प्रिय तथा अप्रिय में न उलझे (अध्याय)।

. कैसा मित्र होना चाहिए, कृतघ्न सबसे पतित

युधिष्ठिर ने पूछा–किस स्वभाव के मनुष्य को मित्र न बनाया जाय? सच्चे मित्र की तुलना में न धन है और न बंधु-बांधव। हित की बात सुनने वाला मित्र दुर्लभ है और कहने वाला दुर्लभ है।

भीष्म ने कहा–राजन! कुलीन, बोलने में समर्थ, ज्ञान-विज्ञाननिष्ठ, रूपवान, गुणवान, निर्लोभी, अथक परिश्रमी, अच्छे मित्रों से संपन्न कृतज्ञ, बहुज्ञ, मधुरस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ, जितेंद्रिय, व्यायामशील, भारवहन करने में समर्थ, दोष-शून्य, सुयश संपन्न, कर्तव्यकर्म में संतुष्ट, क्रोधहीन, मित्रता निभाने में समर्थ, उदासीन होने पर भी अनभल न करने वाले, कष्ट सहकर भी हित करने वाले, मित्रता न छोड़ने वाले, परस्त्री से विरक्त, धर्म-अनुरक्त, मिट्टी का ढेला और स्वर्ण में समान बुद्धि रखने वाले, प्रामाणिक आचरण वाले व्यक्ति से मित्रता करना चाहिए।

लोभी, क्रूर, धर्महीन, कपटी, शठ, क्षुद्र, पापाचारी, संशयशील, आलसी, दीर्घसूत्री, कुटिल, निंदित, गुरुपत्नीगामी, संकट के समय साथ छोड़ देने वाला, दुरात्मा, निर्लज्ज, सब तरफ पाप की दृष्टि रखने वाला, सत्ज्ञान की निंदा करने

. **यो वै न पापे निरतो न पुण्ये नार्थे न धर्मे मनुजो न कामे।**
विमुक्तदोषः समलोष्टकांचनो विमुच्यते दुःखसुखार्थसिद्धेः
(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक)

वाला, इंद्रियलंपट, असत्यभाषी, द्वेषबुद्धि, प्रतिज्ञाशिथिल, चुगुलखोर, अपवित्र बुद्धि, ईर्ष्यालु, पापबुद्धि, दुष्टस्वभाव, चंचल–मन, नृशंस, धूर्त, मित्रों की बुराई करने वाला, परधन–लोलुप, प्राप्त में असंतुष्ट, मंदबुद्धि, धैर्य से विचलित करने वाला, असावधान, क्रोधी, विरोध करने की प्रवृत्ति वाला, थोड़ी त्रुटि होने पर अनिष्ट करने वाला, स्वार्थी, कपटी, शराबी, निर्दय, दूसरों को सताने वाला, मित्रद्रोही, हिंसक, कृतघ्न, परछिद्रान्वेषी आदि लोगों से मित्रता न करे।

ऊपर के सारे दोषियों में कृतघ्न सबसे बड़ा दोषी है। ऐसे नराधम को दूर से त्याग दे। मैं एक ऐसे कृतघ्न की कथा सुनाता हूं, उसे सुनो–

मध्य देश में रहने वाला गौतम नाम का ब्राह्मण था जो वेदों के ज्ञान से शून्य था और दरिद्र था। वह उत्तर दिशा में एक संपन्न गांव में भीख मांगने गया। उस गांव में एक संपन्न डाकू था, परंतु वह दयालु भी था। उसने गौतम ब्राह्मण को रहने के लिए घर और एक वर्ष निर्वाह करने के लिए धन दे दिया। इसके साथ उसने एक शूद्रा स्त्री भी उसे दे दी जो पहले का पति छोड़ चुकी थी और डाकू के यहां गुलाम बनकर रहती थी। गौतम उसको साथ लेकर उस गांव में रहने लगा। वह नित्य वन में जाकर पशु–पक्षियों को मारकर लाता और उन्हें खाता था।

एक दिन गौतम का परिचित दूसरा ब्राह्मण आ गया जो वेद–विद्वान, ब्रह्मचारी तथा तपस्वी था। उसने गौतम को धिक्कारा कि तुम इन कुसंगतियों में रहकर अपने को क्यों खराब करते हो? वह वहां रात भर रहा, परंतु उसने गौतम की किसी वस्तु का स्पर्श नहीं किया और प्रातः चला गया। इसके बाद गौतम भी घर छोड़कर समुद्र की तरफ चला गया। वहां एक वृक्ष के पास एक पक्षी मिला। उसने गौतम का स्वागत किया और उससे कहा–आपको धन चाहिए तो मैं इसका उपाय बताता हूं। यहां से आगे तीन योजन पर एक नगर है। वहां एक राक्षसराज रहता है जो महा धनी है। उसके पास आप जाओ, मेरा नाम लेना कि उसने मुझे आपके पास भेजा है, तो वह आपको धन दे देगा।

गौतम उस नगर में जाकर राक्षसराज से मिला। कार्तिक पूर्णिमा का दिन था। उसके यहां हजारों ब्राह्मण आये थे भोजन करने और धन लेने। राक्षसराज ने गौतम को भी भोजन कराया और उसे काफी सोना–चांदी दे दिया। गौतम लौटकर पक्षिराज के यहां आया और वहां से घर आना चाहा। उसने सोचा कि रास्ते के भोजन के लिए इस पक्षी को ही क्यों न मारकर रख लूं। फलतः गौतम ने उस पक्षी को मारकर तथा उसके पंखों को उखाड़कर फेंक दिया और उसके शव को रख लिया और चल दिया।

वह पक्षी नित्य राक्षसराज के यहां जाया करता था। शाम तक उसे न आया देखकर उसने अपने पुत्र को भेजा कि देखो, पक्षिराज आज क्यों नहीं आया। उसका लड़का जब पक्षिराज के निवास पर आया तो उसके पंख बिखरे पड़े देखकर समझ गया कि वह मारा गया। अतएव वह गौतम का पीछा किया और तीव्रगति से चलकर पक्षिराज की लाश के साथ गौतम को पकड़ लिया और ले जाकर उसे अपने पिता राक्षसराज के सामने पेश किया।

राक्षसराज को बड़ा कष्ट हुआ। उसने पक्षिराज का दाह संस्कार किया और अपने पुत्र से कहा कि इस कृतघ्न गौतम को मारकर इसकी देह के टुकड़े-टुकड़े कर दो और राक्षसों को खाने को दे दो। उसके पुत्र ने वही किया, परंतु गौतम के मांस को राक्षसों ने भी यह समझकर नहीं खाया कि यह कृतघ्न का मांस है। यहां तक कि उसे कीड़े-मकोड़ों ने भी नहीं खाया।

अंततः सुरभिदेवी और इंद्र की कृपा से पक्षिराज तथा गौतम जी गये और पक्षिराज ने गौतम को हृदय से लगाकर प्रेम दर्शाया और उसे धन सहित विदा किया। भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! कृतघ्न को दूर से त्याग देना चाहिए (अध्याय -)।

मीमांसा

मरे प्राणी को कोई जीवित नहीं कर सकता। पक्षी मनुष्य-बुद्धि तथा भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता। कथा का सार है कि कृतघ्न से दूर रहना चाहिए।

(मोक्षधर्म खंड)

50. मोह-शोक-रहित रहने के उपाय

युधिष्ठिर ने कहा-पितामह! आपने यहां तक राजधर्म के प्रति विस्तार से कहा, अब आप आश्रमों में रहने वालों के धर्म के विषय में बतायें।

भीष्म ने कहा-सभी शास्त्रों में स्वर्ग एवं कल्याण की प्राप्ति के लिए तपस्या का उल्लेख है। धर्म के बहुत द्वार हैं *'बहुद्वारस्य धर्मस्य'*। संसार में कोई कर्म निष्फल नहीं जाता। मनुष्य अपने निश्चित मत को कर्तव्य समझता है, अन्य को नहीं। परंतु सही साधन विवेक है। मनुष्य जैसे-जैसे संसार के पदार्थों को सारहीन समझता जाता है, वैसे-वैसे उसके मन में विषयों से वैराग्य होता जाता है। संसार अनेक दोषों से भरा है, यह समझकर विवेकवान अपने कल्याण के लिए प्रयत्न करे।